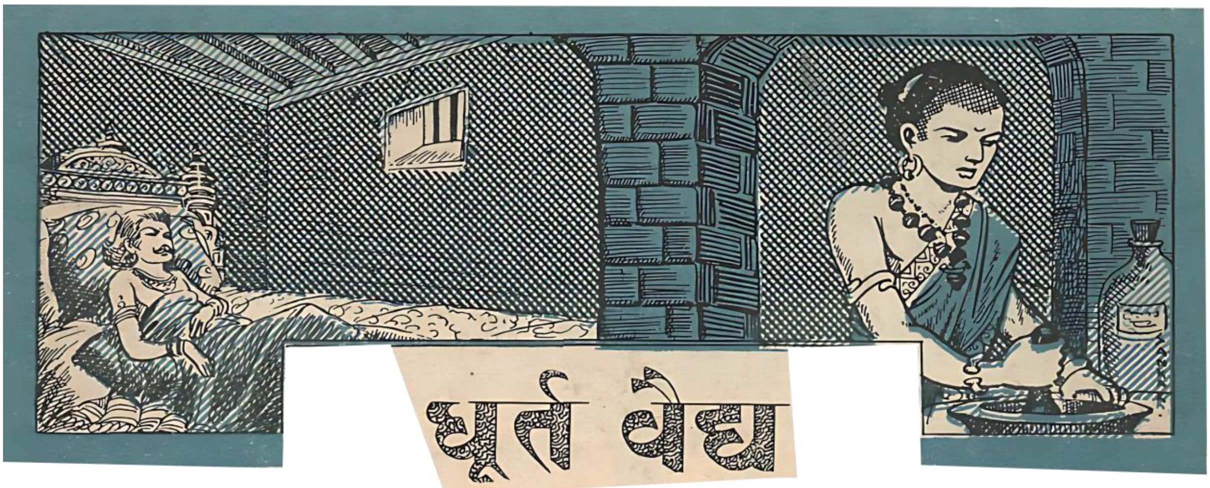
चन्दामामा

माँ - बच्चों का मासिक पत्र



1st Aug. '55



धूर्त वैद्य

एक ज़माने में विलासपुर पर विनयशील राज करता था। वह बहुत विलासी था। इसलिये असमय में ही वह वृद्ध हो गया था। ज़वानी में ही उसके बाल पक गये थे। मुँह और शरीर पर झुर्रियाँ पड़ गई थीं। जोड़ों में दर्द होने लगा था।

राजा ने एक दिन अपने वैद्य तरुणचन्द्र को बुलवाकर पूछा-"क्यों भाई, मेरा बुढ़ापा दूर करने के लिये क्या तुम कोई इलाज जानते हो? तुम मुझे फिर से जवान बना सकते हो?"

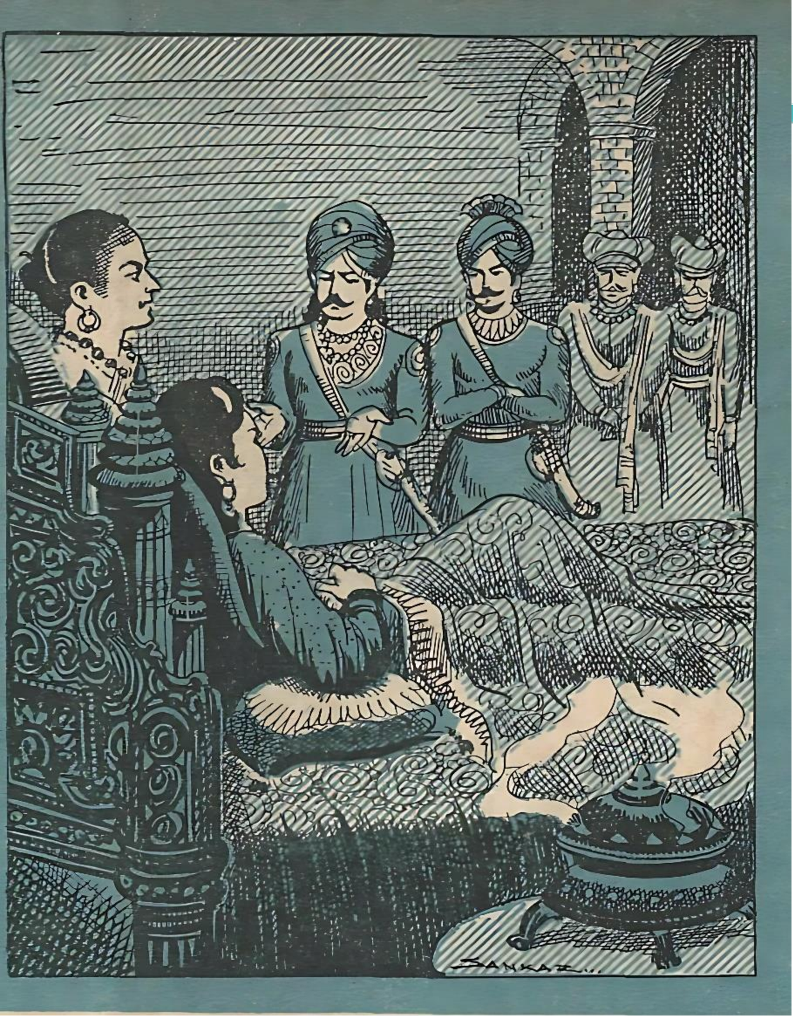
तरुणचन्द्र ने थोड़ी देर सोचकर कहा-"महाराज, मैं काया-कल्प की चिकित्सा जानता हूँ। यदि आप राज-महल छोड़ कर मेरे पास छः महीने रहें तो मैं आपको फिर से जवान बना दूँगा।"

तुरन्त राजा ने ढिँढोरा पिटवा दिया कि वह राज्य-भार को छोड़कर कायाकल्प करवायेगा। तरुणचन्द्र ने नगर से बाहर, ज़मीन के अन्दर एक काल कोठरी बनवायी, और उसमें राजा को रहने को कहा। उस कोठरी में किसी को भी आने-जाने की अनुमति न थी।

तरुणचन्द्र की चिकित्सा के कारण राजा का बुढ़ापा ही नहीं बढ़ा, बल्कि उसको और कोई बीमारी भी हो गई। कुछ ही दिनों में, वह मर भी गया। उसके शव को, तरुणचन्द्र ने उस काल-कोठरी में, गहरा गढ़ा खोदकर दबा दिया।

वह रात-दिन रास्ते में आते जाते मुसाफ़िरों को देखता रहता। एक दिन उसकी नज़र एक ऐसे युवक पर पड़ी, जिसकी शक्ल राजा से मिलती थी। उसे बुलाकर तरुणचन्द्र ने कहा-

श्री गोपालचरण शुक्ल



"यदि तुमने मेरी बात मानी तो मैं तुम्हें राजा बना दूँगा। अगर तुमने मेरी बात न मानी तो मैं तुम्हारी पोल खोल दूँगा और तुम्हें मौत के घाट उतार दूँगा। अगर मानते हो तो मेरे साथ आओ।"

जब युवक ने कहा कि वह उसकी आज्ञानुसार काम करेगा, तब तरुणचन्द्र ने उससे विनयशील के काया-कल्प, व उसकी मृत्यु के बारे में कहा। फिर उसने उसको काल-कोठरी में रख दिया। मन्त्री आदियों के पास ख़बर भिजवायी कि वे आकर राजा से सलाह-मशवरा कर सकते हैं।

दरबार के सब कर्मचारी आये। एक एक करके तरुणचन्द्र उन सब को काल-कोठरी में ले गया। अन्धेरे के कारण उनमें से किसी को भी राजा न दिखाई दिया। पर जैसे जैसे वे राज्य-कार्य के बारे में बात करते जाते, वैसे वैसे वह युवक "हाँ हाँ " करता जाता। इस तरह उसको राज्य के बारे में सारी बातें मालूम हो गई।

छः महीने बाद तरुणचन्द्र ने युवक को काल-कोठरी में से बाहर लाने का प्रबन्ध किया। ज्योतिषियों द्वारा निश्चित शुभ समय में, नगरवासी शहर के बाहर एकत्रित हो गये। कर्मचारी हाथ जोड़कर काल-कोठरी के दरवाज़े पर खड़े थे। युवक राजा की पोशाक पहनकर बाहर निकला।

राजा का कायाकल्प देखकर सबको महान आश्चर्य हुआ। बूढ़ा राजा एक दम बदल गया था। चेहरा लगभग वैसा ही था।

"बहुत परिश्रम से आज मैं राजा के बुढ़ापे की चिकित्सा कर पाया हूँ। अगर ज़रूरत हुई तो मैं उनकी शक्ल-सूरत भी इसी तरह बदल सकता हूँ।" तरुणचन्द्र ने मन्त्री आदि उच्च कर्मचारियों से कहा।

"शक्ल-सूरत भी बदल सकता हूँ।" यह सिर्फ वह युवक ही समझ सका।

जनता राजा को बाजे-गाजे के साथ, जुलूस में दरबार ले गयी। वहाँ उसका फिर पट्टाभिषेक किया गया। क्योंकि उसने पुनर्जन्म लिया था, बुढ़ापे को जीत लिया था, इसलिये उसका नाम "अजर" भी रखा गया।

दरबार में तब से तरुणचन्द्र का प्रभाव भी बहुत बढ़ गया। उसके मुख से जो बात निकलती, क्या मन्त्री, क्या और नौकर- चाकर, उसका सावधानी से सविनय पालन करते। यही मौका देख तरुणचन्द्र अपनी शक्ति और प्रभाव का दुरुपयोग भी करने लगा। राजा पर तो तरुणचन्द्र की इतनी धाक थी कि कहना ही क्या? अजर यह

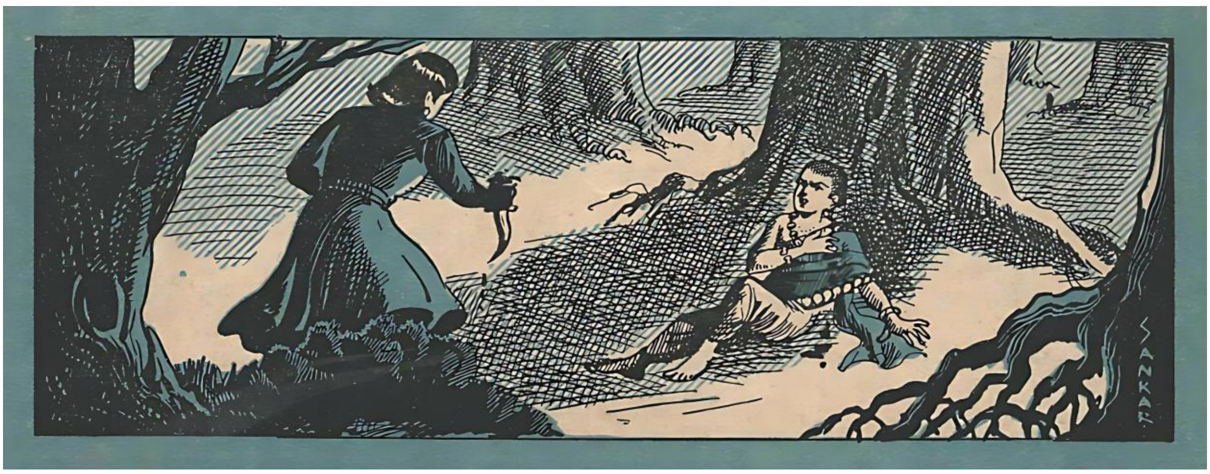
सब बहुत दिनों तक चुपचाप सहता रहा। आखिर उसने तरुणचन्द्र को एक बार एकान्त में बुलाकर कहा-

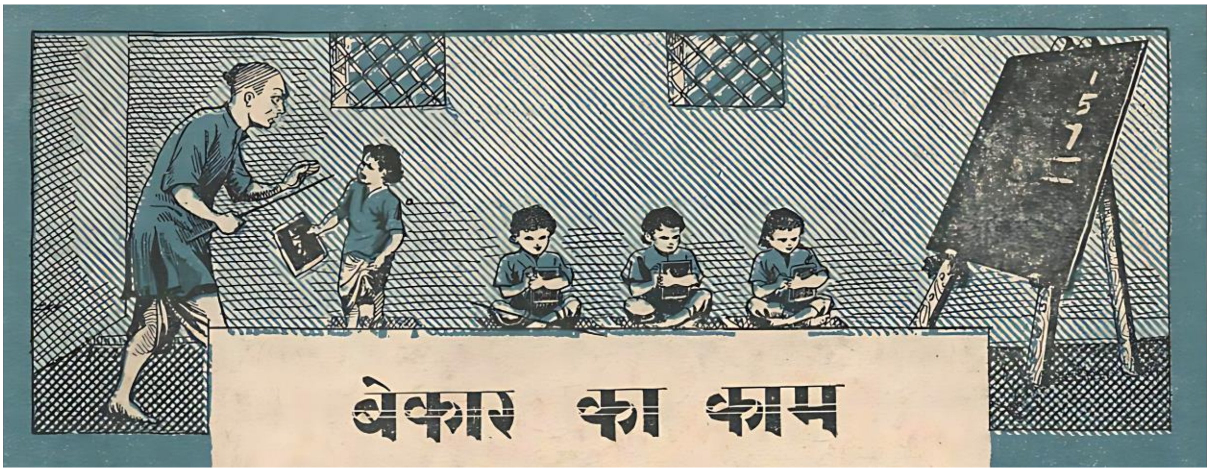
"तुम्हारा व्यवहार मुझे बिल्कुल पसन्द नहीं है। तुमने मुझे राजा बनाया है, इसलिये तुम चाहे तो मुझ पर अधिकार कर लो, पर मन्त्री के कार्य में तुम्हें दखल नहीं देना चाहिये।"

"दो दिन सिंहासन पर बैठते ही तुम्हारा दिमाग फिर गया है। मैं तुम्हारी ही परवाह नहीं करता, तुम्हारे मन्त्री वगैरह की तो गिनती ही क्या? क्या तुम भूल रहे हो कि मैंने तुम्हारा कितना उपकार किया?" तरुणचन्द्र ने खरी-खोटी सुनाई।

"तुम दुष्ट हो। धूर्त हो। तुम जैसे व्यक्तियों से मदद पाना ही गल्ती है। उसके लिये कृतज्ञ होना और भी बड़ी गल्ती है।" कहते कहते अजर ने तलवार उठाई और उसी क्षण तरुण चन्द्र का काम तमाम किया।

अजर तब निश्चिन्त हो, बहुत दिनों तक सुख से राज्य करता रहा।





एक गाँव में एक आदमी रहा करता था। उसे कोई काम-धाम न आता था। चूँकि वह एक पढ़े-लिखे घराने में पैदा हुआ था, दो चार श्लोक, गीत, व कहावतें सीख गया था। नहीं तो वह एकदम काला अक्षर भैंस बराबर था।

जब पिता गुज़र गये, तो उसे न सूझा कि रोज़ी के लिये क्या किया जाय। उसने लोगों से सुन रखा था कि जिसे कोई काम नहीं आता, वह अक्सर पण्डिताई करता है। उसने भी स्कूल मास्टर होने की ठानी।

वह एक दूरवाले गाँव में चला गया और वहाँ एक चौपाल में उसने अपनी पाठशाला चलानी शुरू कर दी। गाँव के कुछ बच्चे पाठशाला में पढ़ने आये। पण्डित ने एक उपाय सोचा। पाठशाला के कुछ लड़कों को बिल्कुल कुछ पढ़ना-लिखना न आता था; पर कई ऐसे भी थे, जो थोड़ा बहुत जानते थे। पण्डित ने उनको औरों को पढ़ाने के लिये कहा।

उसी गाँव में रामप्यारी नाम की एक गृहिणी भी रहा करती थी। उसका पति बहुत दिनों से काशी यात्रा पर गया हुआ था। गये हुये लगभग एक वर्ष हो गया था। तब से उसका कोई पता न था। न जाने यकायक कहाँ से रामप्यारी के पास एक चिट्ठी आई। यह सोचकर कि चिट्ठी उसके पति के पास से ही आई होगी, रामप्यारी दौड़ी दौड़ी स्कूल मास्टर के पास पहुँची। "बेटा, ज़रा इसे पढ़ तो दो। शायद उन्होंने ही कुछ लिख भेजा है।" रामप्यारी ने कहा। पण्डित चिट्ठी लेकर इधर उधर देखने लगा। उसे तो एक अक्षर भी न आता था, भला चिट्ठी कैसे पढ़ता?

श्रीमती डी. मञ्जुलता

पण्डित के हाथ काँपने लगे। चेहरा पीला पड़ गया। वह पसीने पसीने हो गया। पण्डित के हाव-भाव देखते ही रामप्यारी की नब्ज रुक सी गई।

"बताओ भी, क्या सत्यानाश हुआ है? बेटा, जल्दी बताओ।" रामप्यारी ने काँपती हुई आवाज़ में पूछा।

"मेरा सिर, मैं क्या बताऊँ ?" पण्डित ने और भी दीन स्वर में कहा। "क्या चूड़ियाँ निकाल दूँ? टीका हटा दूँ?" रामप्यारी ने हिचकियाँ भरते हुए पूछा।

"आहा!" पण्डित ने दबी आवाज़ में कहा।

रामप्यारी छाती पीटती हुई, रोती रोती घर गई। आस-पड़ोस के लोग उसे आश्वासन देने आये।

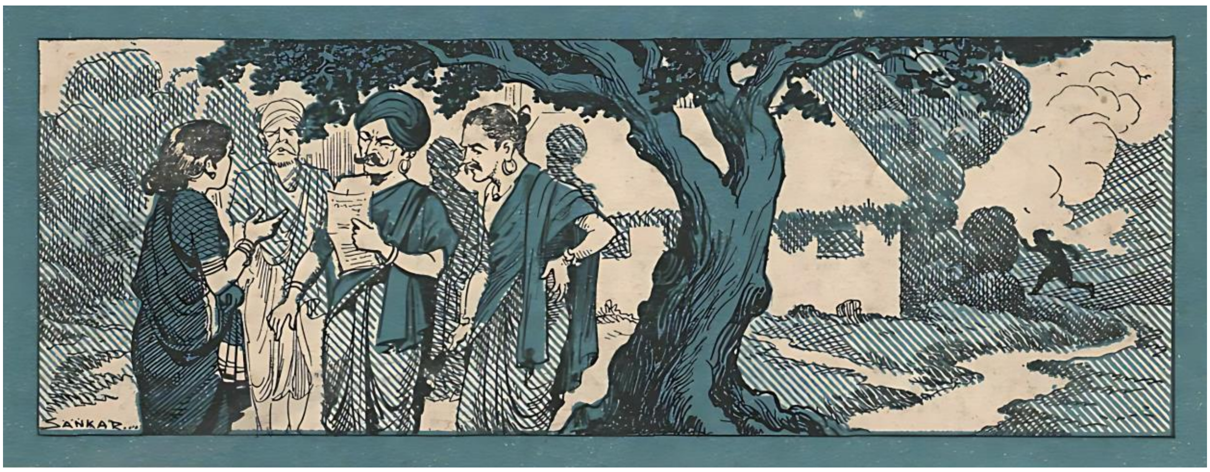
"रोओ मत! रोने से क्या फ़ायदा? कहते तो हैं, काशी जाना श्मशान जाने के बराबर है। बस यही समझ लो।" उन लोगों ने कहा।

गाँव भर में यह बात फैल गयी कि रामप्यारी का पति गुज़र गया है।

"आखिर बात क्या है? कौन ख़बर लाया है? मौत कहाँ हुई? कैसे हुई?" गाँव के बड़े लोग पूछने लगे। रामप्यारी ने रोते रोते उनको वह चिट्ठी दिखायी।

"अरे यह क्या? क्यों इस तरह रो रही हो? चिट्ठी तुम्हारे पति ने ही लिखी है। परसों वह आ रहा है। चिट्ठी पढ़ी किसने थी?" उन्होंने पूछा।

रामप्यारी ने बताया कि स्कूल के पण्डित ने पढ़ी थी। किसी को विश्वास न हुआ। पण्डित को बुलाने के लिये कुछ लोग गये। पर तब तक पण्डित गाँव से कहीं दूर चला गया था।





खुसरो नाम का बादशाह कभी फ़ारस पर हुकूमत करता था। उसे मछलियों का बहुत शौक था। एक दिन सबेरे, अपनी पत्नी शरीन के साथ महल की छत पर वह बैठा हुआ था। तब एक मछुवे ने आकर उसको एक मछली तोहफ़े के तौर पर दी। वह मछली बहुत कीमती और विचित्र थी, बड़ी भी। बादशाह उसको देखकर बहुत खुश हुआ। उसने हुकुम दिया कि मछुवे को चार हज़ार रुपये इनाम में दिये जाएँ।

शरीन ने अपने पति को खुशी में लोगों को मनमाना इनाम देते देखा था। यह उसको बिल्कुल पसन्द न था। मछुवे के चले जाने पर शरीन पति पर गुस्सा हुई।

"एक मछली के लिये चार हज़ार रुपये इनाम? अगर आप इसी तरह देते रहे, तो कल से हर चीज़ के लिये इतना ही इनाम देना पड़ेगा। किसी न किसी बहाने आप इस रुपये को फिर वापिस ले लीजिये।" शरीन ने कहा।

"दिये हुए पैसे को वापिस लेना बादशाह की शान के बर्खलाफ़ है। इससे अपमानजनक बात और कुछ हो सकती है?" खुसरो ने कहा।

"नहीं, ऐसी कोई बात नहीं। शान पर बिना धब्बा लगाये ही दिये हुए को वापिस लिया जा सकता है। मैं एक तरीका बताती हूँ, सुनिये। मछुवे को वापिस बुलवाइये और उससे पूछिये कि मछली नर है या मादा। अगर वह नर कहे तो आप कहिये कि नर मछली नहीं चाहिये। अगर कहे कि मादा है तो कहिये कि नर चाहिये। इस तरह आप मछली वापिस

श्री एस. के. निगम

कर सकते हैं।" यों शरीन ने पति को सलाह दी।

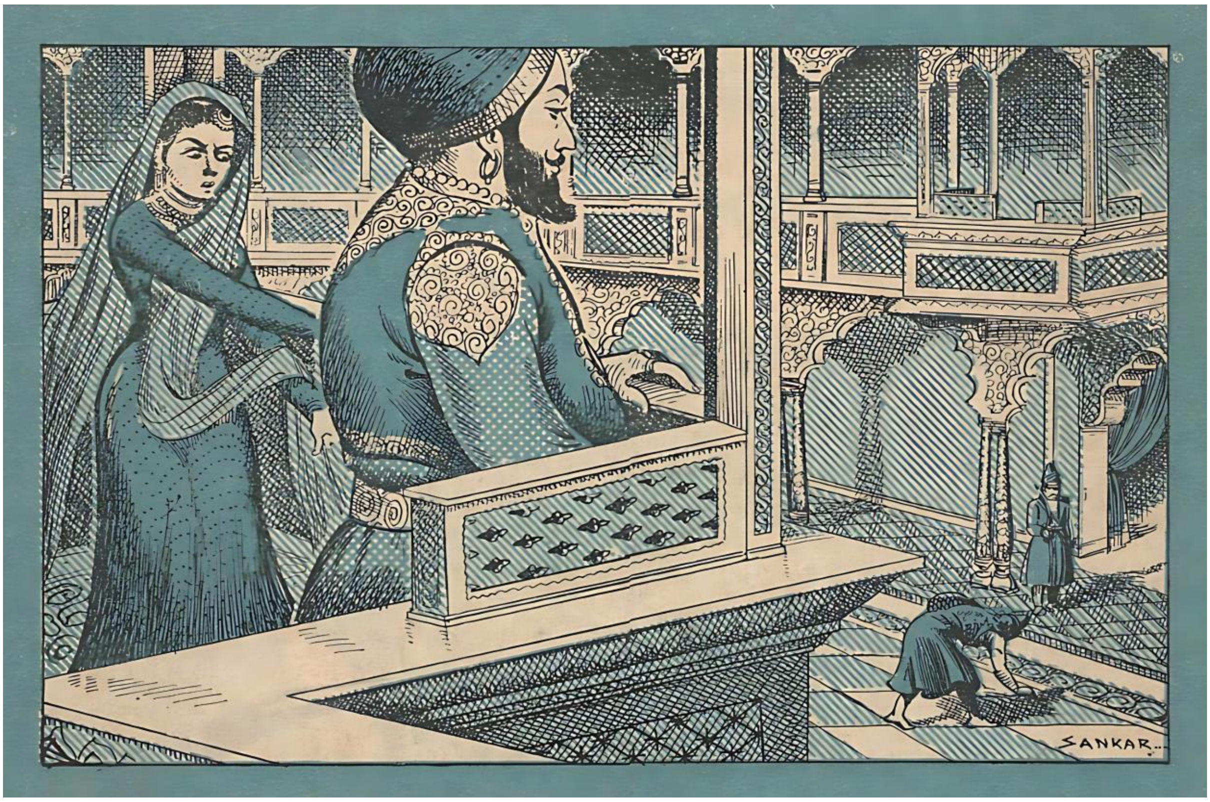
खुसरो अपनी पत्नी को बहुत चाहता था। उसे यह बिल्कुल पसन्द न था कि फ़ालतू उसका मन दुखाया जाय। इसलिये यद्यपि वह कतई न चाहता था, तो भी उसने मछुवे को वापिस बुलवाया।

"क्यों, यह मछली नर है या मादा?" बादशाह ने पूछा।

मछुवे ने झुककर बादशाह को सलाम किया। हुजूर! इस जाति की मछलियों में नर - मादा नहीं होते। हर मछली अपने आप अण्डे देती है और उनको सेती है।"

खुसरो यह सुनकर ठहाका मारकर हँसने लगा। उसने हुकम दिया कि मछुवे को चार हज़ार रुपये के बदले आठ हज़ार रुपये दिये जाएँ। आठ हज़ार रुपये ले जाकर मछुवे की टोकरी में डाले गये। वह खुशी खुशी टोकरी उठाकर घर की ओर चल पड़ा।

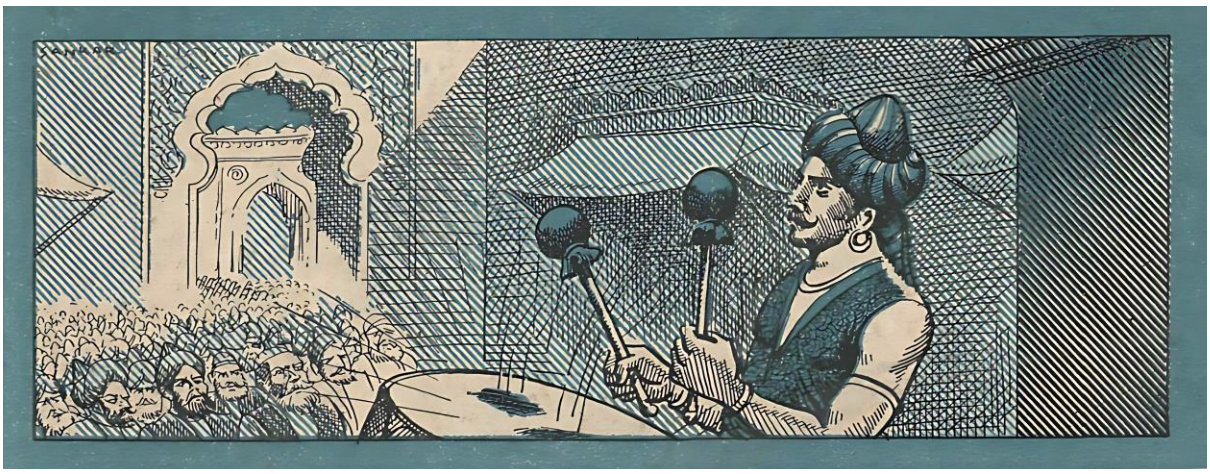
वह जब राजमहल के आँगन में से बाहर जा रहा था, तब टोकरी में से एक रुपया नीचे गिर गया। तुरन्त मछुवे ने टोकरी नीचे रखी और आसपास खोजने लगा।



गिरा हुआ रुपया आखिर उसको मिल गया। उसे उसने टोकरी में डाल लिया। यह सब छत पर से खुसरो और उसकी पत्नी देख रहे थे। "देखा आपने, वह कितना कमीना है? एक रुपया गिर गया तो उसने ज़मीन-आसमान एक कर उसे ढूँढ़ निकाला। उसमें इतनी भी उदारता नहीं कि उस रुपये से किसी गरीब का फ़ायदा होने दे।" शरीन ने कहा। बेगम को सन्तुष्ट करने के लिये खुसरो ने मछुवे को वापिस बुलाकर उससे यों कहा-"अरे कञ्जूस? एक रुपया गिर गया तो तुझे इतना भी ख्याल नहीं आया कि किसी गरीब को वह मिल जायेगा? और झट रुपयों से भरी टोकरी नीचे रख, उस रुपये के लिये ज़मीन छान छानकर देखने लगा। तू कितना लालची है।"

मछुवे ने सलाम करते करते ज़मीन छुई। हुजूर, ज़रा गौर फरमाइये। एक रुपये के गिर जाने से, मैंने कभी न सोचा था कि मैं गरीब हो जाऊँगा। मेरी नज़र में वह रुपया पवित्र था। उस रुपये की एक तरफ़ बादशाह की तस्वीर थी, और दूसरी तरफ़ उनका पाक नाम। अगर वह ज़मीन पर पड़ा रहता, तो मुझे डर लगा कि उसे कोई पैरों तले रौंद देगा। जब हुज़ूर ने मिट्टी में से एक ऐसे मछुवे को ढूँढ़ निकाला है, जिसकी कीमत एक रुपये की भी नहीं, भला मिट्टी में से मेरे एक रुपया खोज निकालने में क्या आश्चर्य है?"

उसकी अक्लमन्दी देख बादशाह इतना खुश हुआ कि उसने उसको चार हज़ार रुपये और दिलवा दिये। उसी दिन उसने सारे शहर में इस प्रकार ढिंढोरा पिटवा दिया-"स्त्री की सलाह का कभी पालन न करो। नहीं तो एक गल्ती को सुधारने के लिये दो गलतियाँ और करनी पड़ेंगी।"





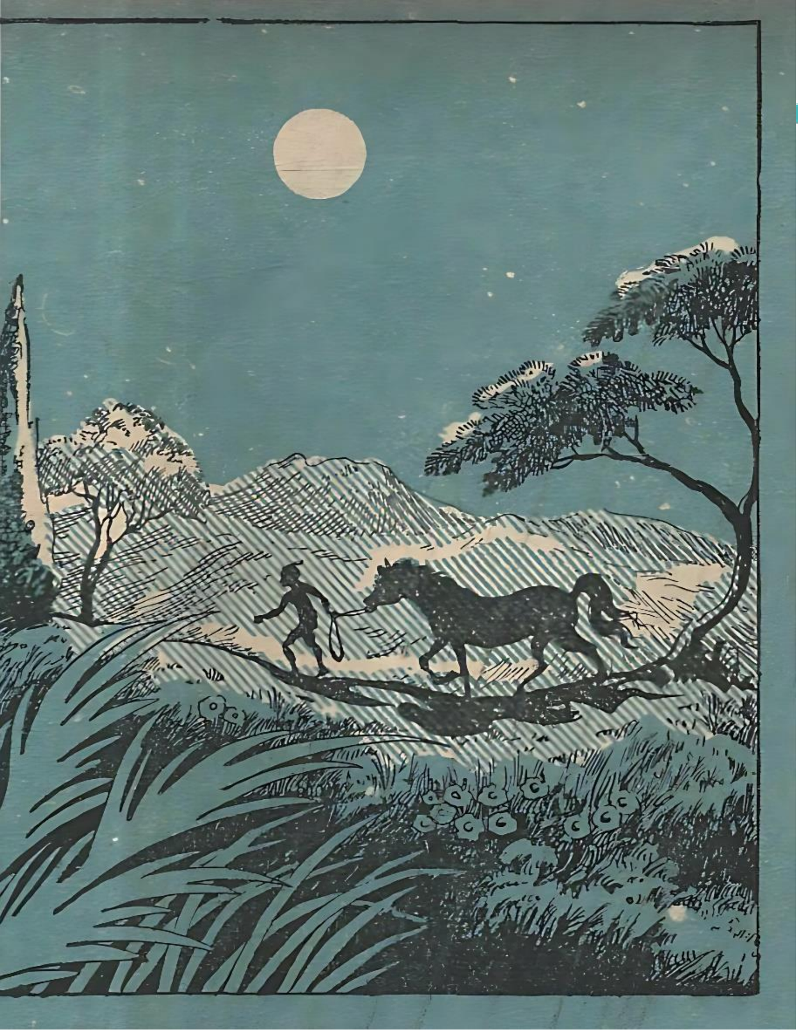
एक पण्डित के एक लड़का पैदा हुआ। उसने उसका नाम हरिशर्मा रखा। परन्तु हरिशर्मा पढ़ाई-लिखाई में बिल्कुल निखट्टू निकला। हरि के कई अर्थ हैं; विष्णु, इन्द्र, सूर्य, चन्द्र, यम, सिंह, घोड़ा, बन्दर, साँप, हवा, किरण, मेण्ढक, वगैरह-वगैरह। पण्डित ने सोचा कि उसके लड़के का नाम मेण्ढक अर्थ में ही सार्थक हुआ है। वह उसको "अरे मेण्ढक" कहकर अक्सर पुकारा करता।

हरिशर्मा बड़ा हुआ। उसका विवाह भी हो गया। उसके कई बच्चे हुए। वह उनका ठीक तरह पालन-पोषण न कर सका। इसलिये वह रोज़ी के लिये सपरिवार एक बड़े शहर में गया। स्थूलदत्त नाम के एक रईस के घर वह नौकरी करने लगा। उसकी पत्नी भी नौकरानी का काम करती। बच्चे गाय-भैंसों को चराया करते।

कुछ दिनों बाद स्थूलदत्त की लड़की का विवाह आया। ज़ोर-शोर से विवाह की तैयारियाँ होने लगीं। हज़ारों की तादाद में सम्बन्धी आये। हरिशर्मा को अच्छा खाना खाये बहुत दिन हो गये थे। हरिशर्मा ललचाने लगा कि विवाह के समाप्त होते होते उसका जिह्वा चापल्य भी काफ़ी ख़तम हो जायेगा। पर विवाह के दिन, निमन्त्रण तो अलग, उसे किसी ने पूछा तक नहीं।

हरिशर्मा को लगा, जैसे किसी ने उसका सिर काट दिया हो। "मेरे पास न पैसा है, न अक्ल ही। इसीलिये तो इस करोड़पति ने मेरा अपमान किया है। कई बेअक्लमन्द भी ऐसा दिखावा करते हैं, जैसे वे अक्लमन्द हों। मैं भी वही काम करूँगा।" यह सोचकर हरिशर्मा ने, जब सब लोग गाढ़-निद्रा में थे, दूल्हे का घोड़ा, जिस पर उसका

श्री राजेन्द्र कोहली



जुलूस निकलना था, उसको खोला और शहर के बाहर एक पेड़ से बाँध आया। अगले दिन जब दूल्हे का घोड़ा न दिखाई दिया तो लोग इधर-उधर दौड़-धूप करने लगे। हरिशर्मा की पत्नी, पति की सलाह पर स्थूलदत्त के पास गई, और उससे कहा-"हुज़ूर! सुना है, दामादजी का घोड़ा नहीं दिखाई दे रहा है। आप मेरे पति से पूछिये। वे इस तरह की बातें आसानी से मालूम कर लेते हैं।"

तुरन्त स्थूलदत्त ने हरिशर्मा को बुलवाया और उससे पूछा कि अगर उसे मालूम हो कि घोड़ा किसने चुराया है, वह बतावे। हरिशर्मा ने ज़मीन पर दो बार लकीरें खींचीं, अंगुलियाँ गिनीं और कहा-"दामाद जी का घोड़ा चोर चुरा ले गये हैं। वह इस समय शहर के दक्षिण में, बाहर खुली जगह में, एक पेड़ से बँधा हुआ है।"

दूल्हे का घोड़ा, जहाँ हरिशर्मा ने बताया था, वहीं बँधा हुआ पाया गया। स्थूलदत्त ने न केवल विवाह में ही उसका सत्कार-सम्मान किया, अपितु बाद में भी उसको बड़ी तनख्वाह पर घरेलू सलाहकार के रूप में रख लिया।

उसके कुछ दिनों बाद ही राजमहल से किसी ने जेवर-जवाहरात चुरा लिये। राजा ने हरिशर्मा के पास ख़बर भिजवायी। हरिशर्मा ने चोरी के माल के बारे में बताने का वचन दिया। उसे महल में ही एक कमरा दे दिया गया और चोरों के पकड़े जाने तक उसको उसी कमरे में रहने को कहा गया।

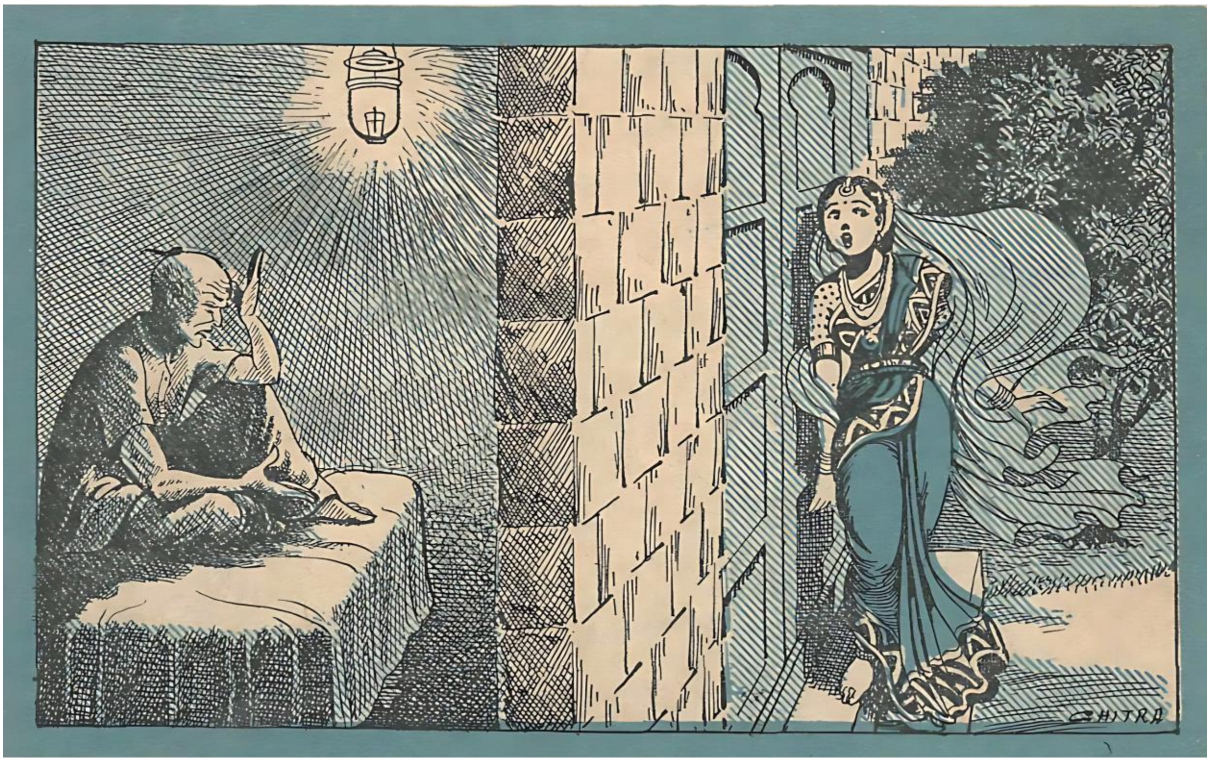
सचमुच चोरी करने वाले थे जिह्वा नाम की दासी और उसका भाई। जब जिह्वा को मालूम हुआ कि चोरों को पकड़ने के लिये एक चतुर व्यक्ति को बुलाया गया

है, तो उसके पैर ठण्डे होने लगे। उसे रात भर नींद न आयी और वह हरिशर्मा के कमरे के पास जाकर, दरवाज़े पर कान लगाकर सुनने लगी।

हरिशर्मा अन्दर बैठा बैठा, अपने पर ही कुढ़ रहा था। विवाह के पकवान खाने के लिये ही तो उसने यह ढोङ्ग रचा था। जिह्वा चापल्य के कारण ही तो उसकी जान की नौबत आ गई थी।

"अरे कम्बख़्त जिह्वा! तूने यह क्या किया है? अब तू भोगेगी, अपनी करतूतों का फल। अगर तूने चोरी के बारे में नहीं बताया तो राजा तेरी चमड़ी खिँचवा लेगा।" हरिशर्मा ने कहा।

यह सुनते ही जिह्वा पसीने पसीने हो गई। वह दरवाज़ा खोलकर अन्दर गई, और हरिशर्मा के पैरों पर पड़ कहने लगी-"बाबू! मेरी रक्षा कीजिये। अनजाने में चोरी की है। इस बार गलती माफ़ कीजिये।" हरिशर्मा ने सोचा कि उसका भाग्य अच्छा है। "अगर राजा तुझे सजा देते हैं तो मुझे क्या मिलता है? यह बता, तूने माल कहाँ छुपा रखा है?" हरिशर्मा ने पूछा।



"बाबू! बगीचे में, अनार के पेड़ के नीचे दाब रखा है।" जिह्वा ने कहा।

हरिशर्मा ने सबेरा होते ही मन्त्री के पास जाकर कहा-"आइये, चोरी गया हुआ माल दिलवाता हूँ।"

अनार के पेड़ के नीचे खोदने से जेवर मिल गये। राजा के आनन्द और आश्चर्य की हद न थी। उसने हरिशर्मा को इनाम देकर महल में रखने की ठानी। पर मन्त्री को हरिशर्मा न जँचा। हरिशर्मा कोई पढ़ा-लिखा तो लगता न था। ऐसे व्यक्ति के पास भी कोई दिव्य-दृष्टि या कोई प्रतिभा हो सकती है; मन्त्री को सन्देह होने लगा। इसलिये मन्त्री ने एक छोटे-से मेण्ढक को पकड़ा, और उसको एक घड़े में डालकर, घड़े का मुख बन्द कर दिया। वह उस घड़े को हरिशर्मा के पास ले गया। पास ही राजा खड़े थे। मन्त्री ने कहा-"ऐसी कोई चीज़ नहीं है, जो आप न बता सकते हों? क्या आप बता सकते हैं कि इस घड़े में क्या है?"

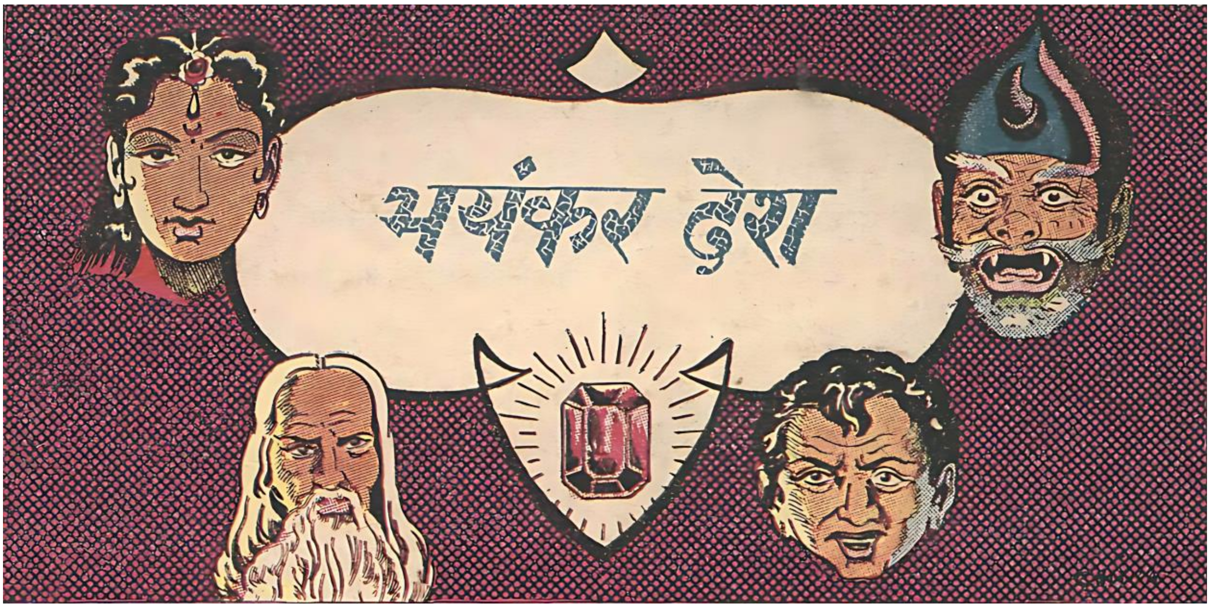
हरिशर्मा डरने लगा कि अब उसकी पोल खुल जायेगी। जब कभी छुटपन में उसका पिता पढ़ाई में, परीक्षा लेता तो उसकी हालत ऐसी ही हो जाती थी।

यकायक पिता की बात याद करते हुये उसने कहा-"पकड़ा गया मेण्ढक।"

मन्त्री थोड़ी देर तक हैरान खड़ा रहा। फिर हरिशर्मा के पैर पकड़कर कहने लगा "स्वामी! मैंने आपकी शक्ति पर सन्देह किया था। मुझे लानत है, मुझे क्षमा कीजिये।"

हरिशर्मा यद्यपि काला अक्षर भैंस बराबर था, तो भी भाग्य उसके साथ था। वह बहुत समय तक उस राजा के पास सपरिवार आराम से रहा।





मराल द्वीप का राजा, मन्दरदेव एक दिन अपने बगीचे में टहल रहा था। उसे यकायक किले की ड्योढ़ी के पास शोर-शरावा सुनाई दिया। जनता के चिल्लाने, व सैनिकों की हलचल से सारा किला गूँज-सा रहा था। इस शोर-शरावे और खलबली का कारण जानने के लिये राजा मन्दरदेव बगीचे से ड्योढ़ी की तरफ़ चला। धीमे धीमे उसका कुतूहल बढ़ता जाता था।

जब मन्दरदेव ड्योढ़ी के पास पहुँचा तो उसको मन्त्री की आवाज़ सुनाई दी। मन्त्री लोगों को शान्त रहने का आदेश दे रहा था। राजा को आता देख, कुछ सैनिकों ने मन्त्री को उसके आगमन की सूचना दी। तुरन्त मन्त्री उससे मिलने के लिये गया। मन्त्री त्रस्त-सा था।

"यह क्या गड़बड़ी है ?" मन्दरदेव ने पूछा। मन्त्री थोड़ी देर स्तब्ध हो ड्योढ़ी की तरफ़ देखने लगा। फिर उसने कहा-"महाराज! सच है, या झूठ, यह अभी तक नहीं मालूम हुआ है; पर मेरा अपना निजी ख्याल यह है कि इसमें ज़रूर कुछ न कुछ सच्चाई है। यह हम सब जानते ही हैं कि कुछ दिनों से कुण्डलिनी द्वीप में अराजकता फैली हुई है। मगर अब यह ख़बर मिली है कि सेनापति नरवाहन मिश्र ने उस देश पर अपना अधिकार जमा लिया है और वह अब हमारे देश पर आक्रमण



हमें अपने दूतों द्वारा मालूम हो सकेगी। उनके आने का समय भी हो गया है।"

राजा थोड़ी देर तक मन्त्री की तरफ़ देखता रहा, जैसे कुछ पूछना चाहते हो। "अच्छा, इस ख़बर के बारे में मालूम होते ही मुझे सूचना देना। मैं प्रतीक्षा कर रहा हूँगा।" यह कह वह अपने महल की ओर जाने लगा।

राजा के जाते ही मन्त्री सीधे किले के बुर्ज़ पर गया। वहाँ से, दूरी पर समुद्र में नौकाओं को देखा जा सकता था। मन्त्री को दूरी पर पाल फैलाये हुये एक नाव दिखाई दी। वह ठीक मराल द्वीप की ओर चली आ रही थी। जैसे जैसे वह पास आती जाती थी, वह और स्पष्ट होती जाती थी। उसकी गति में एक प्रकार की तेजी थी।

करने आ रहा है। यह ख़बर मछियारों द्वारा मालूम हुई है। लोगों में खलबली मची हुई है। उनको शान्त रहने की मैं आज्ञा दे रहा था।"

मन्दरदेव ने यह सुन अपना सिर एक तरफ़ झुका लिया। शायद उसका भी मन्त्री की तरह यह ख्याल था कि इस ख़बर में सच्चाई हो सकती है। राजा को मौन देख मन्त्री

ने सोचा कि राजा आनेवाली विपत्ति के बारे में सोच रहा है, इसलिये उसने कहा-"महाराज, मैंने पहले ही सेनापति को सावधान रहने के लिये ख़बर भेज दी है। यह ख़बर कितनी सच है और कितनी झूठ, शाम तक

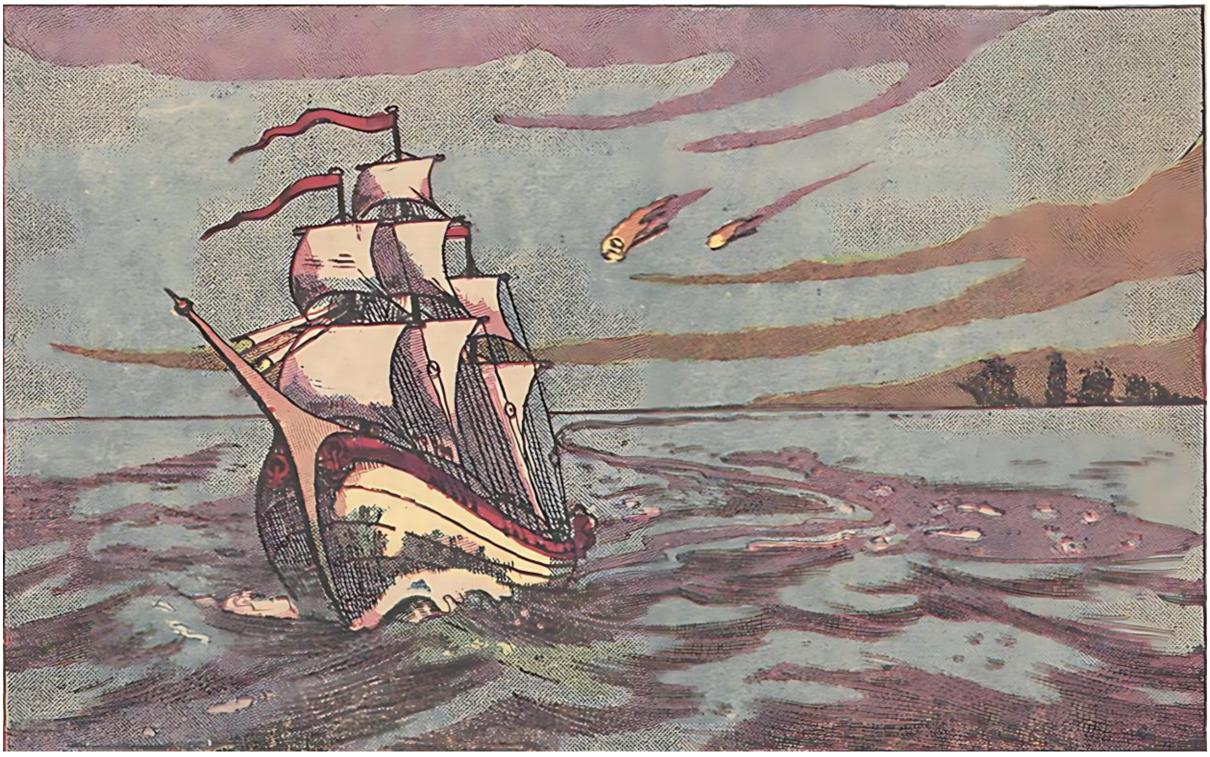
इधर, मन्त्री से ख़बर मिलते ही, सेनापति सैनिकों को एकत्रित करने में जुटा हुआ था। मराल द्वीप चारों ओर से समुद्र से घिरा हुआ था, और उस पर आसपास के द्वीपों से कभी कभी हमले भी होते रहते थे। इसी कारण मराल द्वीप

में सैनिक शिक्षा प्रति नागरिक के लिये अनिवार्य थी।

सेनापति कुछ सैनिकों को लेकर, समुद्र तट की ओर निकला। मराल द्वीप की नौ-सेना भी, ज़रूरत पड़ने पर, शत्रु से लोहा लेने के लिये तैयार हो रही थी। शंख-नाद और घोषणाओं द्वारा, प्रति नाविक को अपनी अपनी नौका में बुलाया जा रहा था।

किले के बुर्ज़ पर से मन्त्री उत्साह के साथ यह सब तय्यारियाँ देख रहा था। सेनाओं को, इतनी दृढ़ निश्चय, और कार्य-कुशलता के साथ अपना कर्तव्य निभाता देख, उसको बहुत सन्तोष हुआ। पर सहसा यह सन्तोष चिन्ता में परिवर्तित हो गया। दूतों की नौका के पीछे यकायक काले बादल घिर आये।

कहीं ऐसा न हो कि तूफान आ रहा हो, मन्त्री ने ज्योंही यह जानने के लिये गौर से देखा, तो उसे पता लगा कि कई जल-पोतों का समूह मराल द्वीप की ओर चला आ रहा था। दूसरे क्षण उन जल-पोतों में से काला धुआँ आने लगा और थोड़ी देर बाद, तेल से सनी, जलती मशाले बाणों पर लगाकर दूतों की नौका पर फेंकी जाने लगीं।



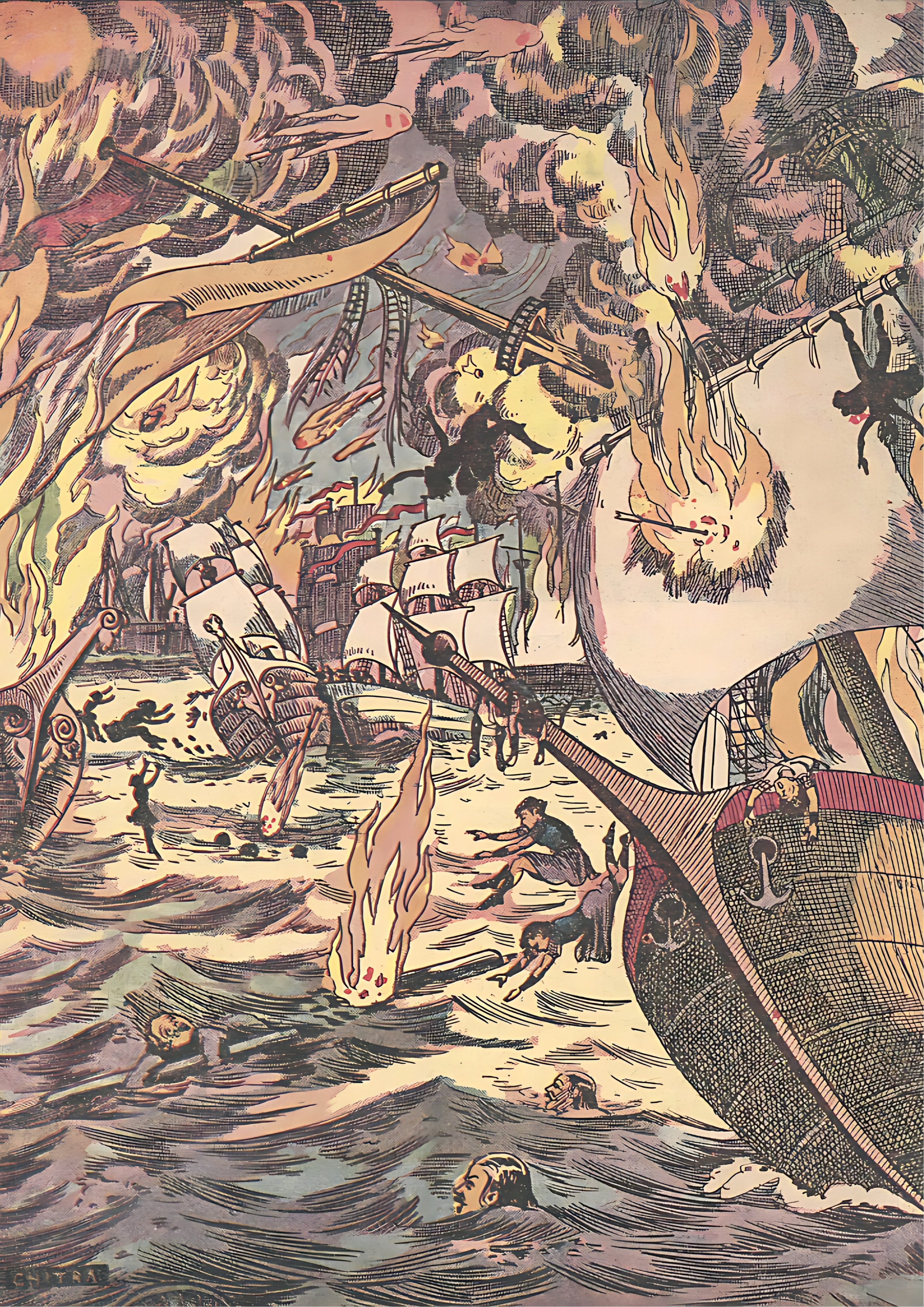


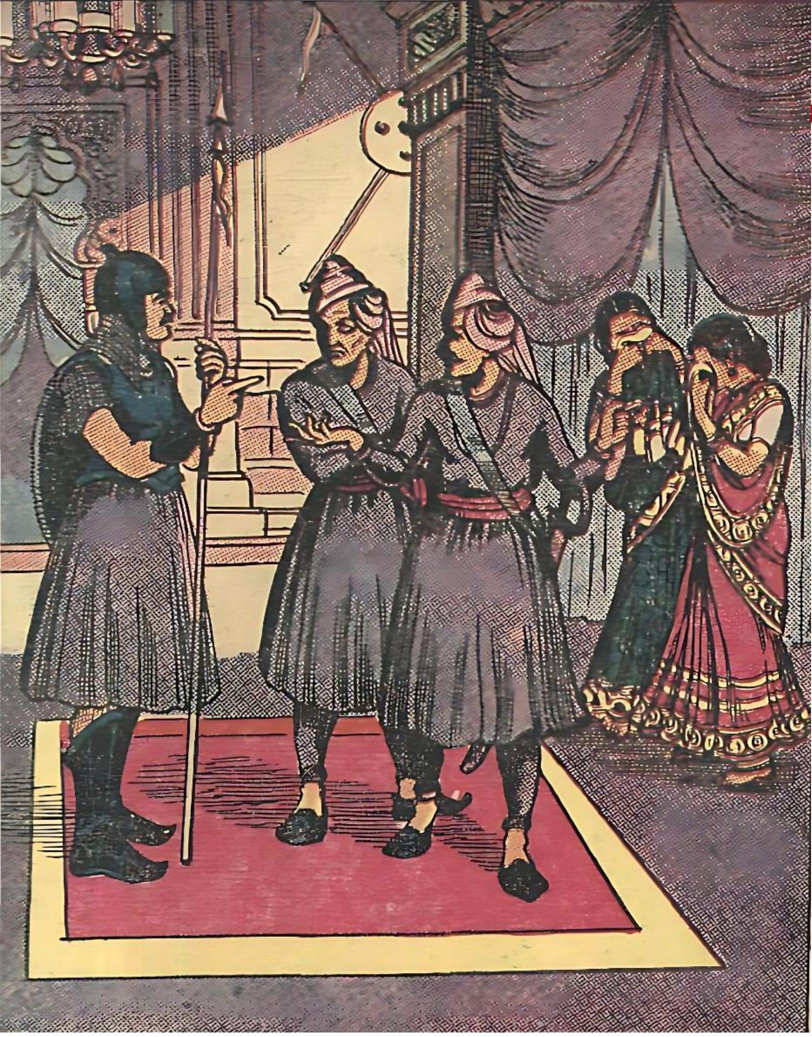
मन्त्री तब भलीभाँति जान गया कि मछियारों द्वारा लायी गयी ख़बर सच थी। बिना किसी युद्ध घोषणा के, शत्रु को बिना सावधान किये, दूसरे देशों पर आक्रमण करना, शायद नरवाहन मिश्र की, जिसने कुण्डलिनी का राज्य हथिया लिया था, नयी परम्परा थी। यह सोच मन्त्री गुस्से के मारे दाँत कटकटाने लगा। सौ दो सौ साल पहिले, शाक्तेय नाम के मान्त्रिक ने, बिना किसी युद्ध-घोषणा के, बहुत-से द्वीपों पर कब्जा कर लिया था। उन दिनों लोग कहा करते थे कि चूँकि वह राजवंश का न था, मान्त्रिक था, इसीलिये ही उसने ऐसा किया।

मन्त्री अभी इसी उधेड़बुन में था कि मराल द्वीप की नौ-सेना, आपत्ति को देख, सिंह- निनाद के साथ, नौकाओं को लेकर आगे बढ़ चली। देखते देखते मराल द्वीप के चार-पाँच मील की दूरी पर कुण्डलिनी और मराल द्वीप की नौ-सेना युद्ध के लिये सन्नद्ध हो गयी।

इस बीच, सैनिक किले के बुर्ज़ पर आने लगे। कहीं ऐसा न हो कि मराल द्वीप की नौ-सेना युद्ध में हार जाये, और शत्रु अन्दर आ जाये, इसलिये नगर और किले की रक्षा के लिये सैनिक वहाँ भेजे गये थे। मन्त्री ने उनमें से एक सैनिक द्वारा राजा के पास युद्ध-वार्ता भेजी।

समुद्र में घमासान युद्ध हो रहा था। दोनों तरफ़ के सैनिक हाथ में जान लेकर एक दूसरे का मुक़ाबला कर रहे थे। तेल में कपड़ा भिगोकर, उसे बाण पर लपेट, आग लगा कर, एक दूसरे की नाव पर फेंक रहे थे। जलती हुई नौकाओं में से एक तरफ सैनिक समुद्र में कूद रहे थे और दूसरी तरफ़ शत्रु, जलती हुई नौकाओं





में, आग को बुझाकर, उन पर कब्जा करने के लिये ज़मीन-आसमान एक कर रहे थे। मन्त्री यह सब किले के बुर्ज़ पर से देख रहा था। इस युद्ध का परिणाम, मराल देश के अनुकूल होगा, इसकी आशा उसके मन में कम होती जा रही थी। बस, वह अब यही उम्मीद बाँधे बैठा था कि कम से कम दूतोंवाली नौका किनारे पर सुरक्षित लग जाये। तभी वह कुण्डलिनी द्वीप में, जो परिवर्तन हुए थे, उनके बारे में जान सकता था।

उसको पैरों की आहट सुनाई दी। मन्त्री ने जो देखा तो वह सैनिक, जिसे राजा के पास भेजा गया था, हाँफता-हाँफता, बुरी हालत में वहाँ खड़ा था।

"क्यों, क्या हुआ? क्यों इस तरह दौड़ा दौड़ा आया है?" मन्त्री ने आतुर स्वर में सैनिक से पूछा।

"राजा कहाँ हैं, यह पता नहीं लग रहा है।" सैनिक ने घबराते हुए जवाब दिया।

"यह तुझे कैसे . मालूम हुआ?" मन्त्री ने पूछा।

"महाराज! जब मैं महल में पहुँचा, तो सब जगह गड़बड़ी मची हुई थी। लोग कह रहे थे कि दो चार मिनट पहिले ही उन्होंने राजा को अपने कमरे में सहायता के लिये चिल्लाते सुना था। सिपाहियों ने उनके लिये सारा महल खोजा, पर उनका पता न लगा। उनके दो अङ्ग-रक्षक भी नहीं दिखाई दे रहे हैं।"

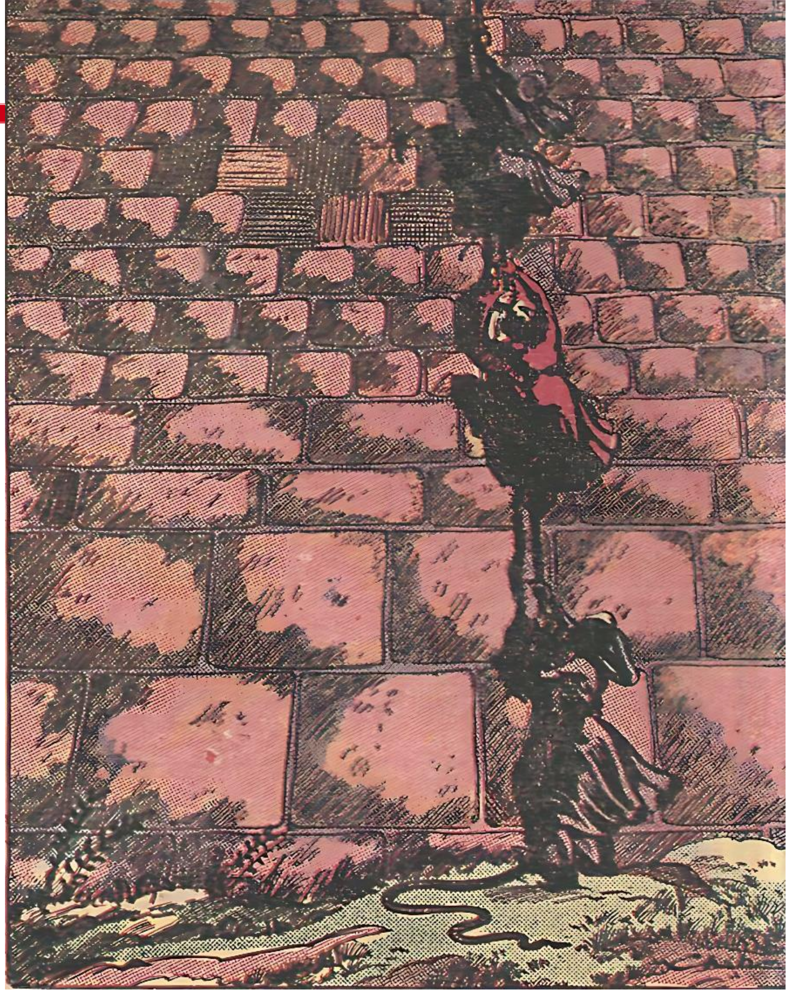
ज्योंही यह पता लगा कि दो अङ्ग-रक्षक फ़रार हैं, उसे तुरन्त सन्देह हुआ कि ज़रूर दाल में कुछ काला है। हो सकता है कि कुण्डलिनी द्वीप को हथियानेवाले नरवाहन मिश्र की यह नई वाहियात करतूत हो। सिपाही तो कह ही रहे थे

कि राजा का महल में कहीं पता न लगा। इसलिये मन्त्री ने सोचा कि तब तक शायद राजा को किले के पार भी ले जाया गया हो।

यह सन्देह होते ही खुछ सैनिकों को लेकर, किले के एक बुर्ज़ से दूसरे बुर्ज़ की ओर भागते हुये, मन्त्री ने किले के बाहर वाली खाई की ओर देखा। उसे एक जगह, किले की दीवार से लटकती हुई रस्सी के सहारे तीन मनुष्य नीचे उतरते हुये दिखाई दिये। तुरन्त सैनिक चिल्लाये-"वे हैं महाराज और उनके अङ्ग-रक्षक।"

अब क्या करना चाहिये? मन्त्री के सामने यह विकट समस्या थी। किले पर गढ़े हुये कील को, जिस पर से रस्सी लटक रही थी, काटा जा सकता था। परन्तु ऐसा करने से, राजा और उनको भगा कर ले जानेवाले अङ्ग-रक्षकों की खाई में पड़ने की आशङ्का थी। अगर बिना कुछ किये वे देखते रहते तो वे लोग आसानी से राजा को भगाकर ले जा सकते थे।

मन्त्री अभी यह सोच ही रहा था कि इतने में एक सैनिक आश्चर्य से चिल्लाया-"देखिये हुजुर, उस किनारे



पर तीन घोड़े तयार खड़े हैं।" जब मन्त्री ने उस तरफ़ देखा तो वास्तव में तीन घोड़े मय ज़ीन के वहाँ खड़े थे। मन्त्री को मालूम हो गया कि मौका मिलने पर राजा को भगा ले जाने के लिये, महल में ये लोग नरवाहन मिश्र का नमक खा रहे थे। मन्त्री ने समुद्र की तरफ़ देखा। दूतों की नाव पास पहुँच रही थी। उसके साथ कुण्डलिनी द्वीप की दो-चार नौकायें भी किनारे की ओर आ रही थीं।

मन्त्री को परिस्थिति विषम होती लगी। उसने सैनिकों की ओर मुड़कर कहा-

"तुम में से चार घोड़ों पर सवार होकर राजा की रक्षा के लिये जाओ। इस दुर्घटना के बारे में, बाहर खड़ी हुई जनता को न मालूम हो। सनझे? जाओ।" सैनिक चले गये। मन्त्री ने नीचे की ओर देखा। तब राजा को द्रोही अङ्ग-रक्षक घोड़ों की तरफ़ ले जा रहे थे। राजा आगे आगे जा रहा था और अङ्ग-रक्षक तलवार लिये हुए, पीछे पीछे। थोड़ी देर में राजा के घोड़े के पीछे, वे भी घोड़ों पर सवार होकर सरपट भागने लगे। मन्त्री को पता लग गया कि वे राजा को समुद्र की ओर भगाकर ले जा रहे थे।

राजा की रक्षा के लिये भेजे गये सैनिक घोड़ों पर सवार होकर निकले। थोड़ी देर में वे भी द्रोही अङ्ग-रक्षकों का पीछा करते हुए हवा से बातें करने लगे। आहट सुन, ज्योंही द्रोही अङ्ग-रक्षकों ने पीछे देखा तो वे जान गये कि सैनिक उनका पीछा कर रहे थे। उन्होंने अपनी तलवारों से राजा की पीठ को निशाना बनाकर उनको जल्दी चलने के लिये कहा।

यह सब मन्त्री बुर्ज़ पर से देख रहा था। वह एक क्षण क़ैदी राजा की तरफ़ देखता, फिर बढ़ती हुई शत्रु-सेना की ओर। वह हृदय पर हाथ रख, आकाश की ओर मुँह कर कहने लगा-"मराल देवी! क्या तू अपने भक्तों की कठिन परीक्षा ले रही है?"

तब यकायक बादल गरजने लगे, बिजली चमकने लगी, तूफ़ान चलने लगा। ऐसा लगता था, जैसे मराल द्वीप को प्रलय झकझोर रहा हो।

[अभी और है]





राजा विजय के रत्नावली नाम की एक लड़की थी। जब वह बहुत छोटी थी, उसकी दासी रोज़ एक कहानी सुनाई करती। वह कहानी यों थी:-

एक जङ्गल में एक जङ्गली कबूतरों का जोड़ा रहा करता था। उनके बहुत दिनों बाद चार बच्चे पैदा हुए। एक दिन जङ्गल में आग लग गयी और कबूतरों के छोटे छोटे बच्चे, जिनके अभी पंख न निकले थे, उस आग में जलकर राख हो गये। यह देख मादा कबूतर बहुत दुःखी हुई उनने कहा-"जब मेरे बच्चे मर गये हैं, तो मेरे जीने से क्या फ़ायदा? मैं भी इसी आग में आत्म-हत्या कर लूँगी।" नर कबूतर भी आत्म-हत्या करने के लिये उसके साथ निकल पड़ा। पर रास्ते में नर कबूतर ने कहा-"हमें आत्म-हत्या नहीं करनी चाहिये। अगर हम जीवित रहे तो फिर भी बच्चे हो सकते हैं। यदि हम ही मर गये तो फिर क्या रहा? " "छी, तुझे बच्चों के मर जाने का भी दुःख नहीं है। मैं तेरी बात न सुनूँगी।" कहती कहती मादा कबूतर अकेली आग में जा कूदी और जल भुनकर मर गई। दुनियाँ में किसी का भी विश्वास किया जा सकता है, पर मर्दों का नहीं करना चाहिये।

यह कहानी सुन राजकुमारी दादी से पूछा करती-"मादा कबूतर का क्या हुआ?" दासी मुस्कराकर कहती- "वही कबूतर हमारे राजा के घर पैदा हुई। वह यह कहकर राजकुमारी को चूमती-पुचकारती।

कुछ दिन बाद वह दासी मर गई। परन्तु राजकुमारी दासी की सुनाई हुई कहानी, और उसकी सलाह कि मर्दों का विश्वास नहीं करना चाहिए, भूल न पाई।

श्री विनोद कुमार शर्मा



रत्नावली ने एक दिन पिता से कहा- "पिताजी! मेरे लिये अलग बगीचे में एक महल बनवाइये। उसमें केवल मैं और मेरी सहेलियाँ ही रहेंगी। उस तरफ कोई आदमी भटककर भी नहीं आना चाहिये। सख्त पहरा लगवाइये।"

"यह क्या कह रही हो? इधर हम तुम्हारी जल्दी शादी करने की सोच रहे हैं और तुम यों कह रही हो।" पिता ने कहा।

इस जन्म की बात तो अलग, मैं हज़ार जन्मों में भी शादी न करूँगी।" रत्नावली ने कहा।

कुछ समय बीत गया। दूर देश से एक राजकुमार और एक मन्त्री का लड़का आये। रत्नावली के महल के चारों ओर अच्छा बगीचा देख, वहाँ उन्होंने थोड़ी देर आराम कर आगे जाने की ठानी।

ज्योही उन्होंने बगीचे में पैर रखा, त्यों ही एक दासी चिल्लाती, खरी-खोटी सुनाती हुई वहाँ आई-"जाओ जाओ। यहाँ पुरुषों को नहीं आना चाहिये।"

"हम क्या तुम्हारी रत्नावली को उठा ले जायेंगे?" राजकुमार ने पूछा।

"हमारी मालकिन को पुरुषों की छाया से भी नफ़रत है। जाओ।" दासी ने कहा। दोनों बगीचे में से बाहर चले आये।

"अरे दोस्त! मेरी अन्तरात्मा कह रही है कि इस पुरुषद्वेषी स्त्री से अवश्य विवाह करना चाहिये। बताओ, कैसे उद्देश्य पूरा किया जाय?" राजकुमार ने पूछा।

"अगर वह बदशक्ल निकली तो ? मैं सोच-विचारकर उपाय बताऊँगा।" मन्त्री के लड़के ने कहा।

दोनों शहर में गये और एक बुढ़िया के घर में रहने लगे।

"दादी, सुना है तुम्हारी राजकुमारी पुरुषों से द्वेष करती है। वह भोण्डी तो नहीं है?" मन्त्री के लड़के ने पूछा।

"अरे, हमारी रत्नावली तो बहुत ही सुन्दर है।" बुढ़िया ने कहा।

"तो फिर वह पुरुषों से क्यों नफ़रत करनी है?" मन्त्री के लड़के ने पूछा।

"यह बात किसी और से कभी न कहना। रत्नावली पहले जन्म में मादा कबूतर थी। मुश्किल से उसके सन्तान हुई और अग्नि देवता ने उनको भस्म कर दिया। मादा और नर कबूतर आत्म-हत्या करने के लिये निकले। अन्त में नर कबूतर नज़र बचाकर कहीं चला गया। मादा अग्नि में मरकर हमारे राजा के घर पैदा हुई।" बुढ़िया ने कहा।

"यह रहस्य कैसे मालूम हुआ?" मन्त्री के लड़के ने पूछा। "बेटा, रत्नावली पहले जन्म की बातें जानती है।" बुढ़िया ने कहा।

मन्त्री के लड़के को एक उपाय सूझा। अगले दिन सवेरे वे शहर से बाहर गये और वेष बदलकर वापिस चले आये। सीधे राजमहल की ओर गये ।

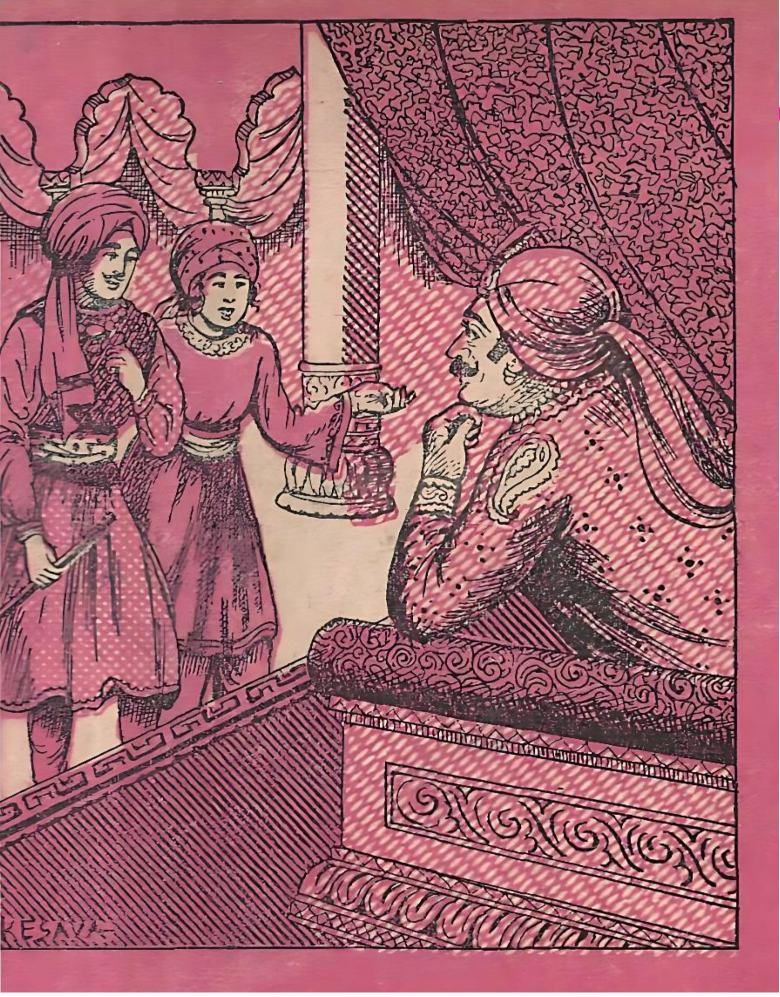
"आप कौन हैं? किस देश के रहनेवाले हैं?" राजा ने मामूली प्रश्न पूछे।



"महाराज, हम नेपाल के रहनेवाले हैं। ये मेरे गुरु हैं। जादू करने में इनकी बराबरी करने वाले दुनियाँ में कोई नहीं है। रेगिस्तान में ये बड़े बड़े जङ्गल पैदा कर सकते हैं। सूखे पेड़ों पर फल लगा देते हैं। आपको इनको इनाम देना चाहिये।" मन्त्री के लड़के ने निवेदन किया।

"अच्छा! हम इनके जादू का प्रदर्शन बगीचेवाले महल में करवायेंगे। हमारी बेटी भी देखेगी।" राजा ने कहा।

मन्त्री कुमार ने आपत्ति करते हुए कहा -"महाराज, ऐसा न कीजिये। हमारे गुरु



स्त्री द्वेषी हैं। स्त्रियों को वे नहीं देखते हैं। भले ही आपका इनाम न मिले, पर उनको अपना व्रत तोड़ना हरगिज़ पसन्द न होगा।"

"ओहो! ऐसी बात है? जाने दो। क्या स्त्रियाँ परदे में से उनका प्रदर्शन देख सकती हैं?" राजा ने पूछा।

"वे दिखाई नहीं देनी चाहिये। उनकी आवाज़ भी नहीं सुनाई पड़नी चाहिये।" मन्त्री के लड़के ने कहा।

उसी तरह प्रबन्ध कर दिया गया। बगीचेवाले महल के आङ्गन में स्त्रियों के लिये अलग जगह का इन्तज़ाम कर दिया गया। परदे बाँध दिये गये।

जादू शुरु करने से पहले राजकुमार खड़ा होकर यों कहने लगा-"अगर मेरा हुनर स्त्रियाँ ठीक तरह न देख पायें तो महाराज मुझे माफ़ करें। मुझे स्त्रियों से क्यों द्वेष है, इसका कारण बताता हूँ। मैं अपने पूर्व-जन्म की बात जानता हूँ। मैं पहले जन्म में एक जङ्गली कबूतर था। मैं और मेरी पत्नी खूब प्यार से रहा करते थे। बहुत दिनों बाद हमारे बच्चे पैदा हुए, पर अग्निदेवता उन्हें ज़िन्दा निगल गया। मैंने और मेरी पत्नी ने आत्म-हत्या करने की सोची। परन्तु अन्तिम क्षण में मेरी स्त्री मुझे छोड़कर कहीं चली गई। यह सोचता हुआ कि स्त्रियों का कभी भी किसी जन्म में भी विश्वास नहीं करना चाहिये, मैंने अपने को अग्नि में आहुति दे दी।

उस आहुति के फल स्वरूप ही अब मैं जादू का ज्ञान लेकर पैदा हुआ हूँ। मेरी स्त्री का जन्म-जन्मों में भी किसी से विवाह न होगा। यही मेरा शाप है। मैं स्त्रियों से इसीलिये घृणा करता हूँ।"

रत्नावली, जो यह सब कुछ सुन रही थी, परदा हटाकर सामने आई। उसने कहा-"यह झूठ है। सरासर झूठ है। मैं तो सन्तान की क्षोभ में मर गई थी। न जाने तू कहाँ उड़ गया था।"

"मैं? मैं तो उसी समय आग में कूद पड़ा था। तूने ही मुझे धोखा दिया था।" राजकुमार ने कहा।

तूने ही तो कहा था कि यदि हम ज़िन्दा रहे तो बच्चे फिर भी पैदा हो सकते हैं। तू ही धोखेबाज़ है।" राजकुमारी ने कहा। "मैंने तो तेरे निश्चय को परखने के लिये वह बात कही थी। भगवान अगर बच्चे देना ही चाहते थे, तो उनको अग्नि को क्यों सौंप देते? तू ही धोखेबाज़ है। मेरे यह कहते ही तू जान बचाकर एक तरफ़ भाग गई।" राजकुमार ने क्रोध का अभिनय करते हुये कहा।

"खैर, जो हुआ सो हुआ। गुरुजी! अब आप अपनी पत्नी को क्षमा कर दीजिये। मुझे ऐसा लग रहा है कि उस भगवान ने ही आप दोनों को फिर आपस में मिलाया है।" मन्त्री के लड़के ने कहा।

राजकुमार प्रसन्न हो रत्नावल्ली के पास जाकर कहने लगा-"यदि मैंने तुमसे अन्याय किया है तो मुझे क्षमा करो। मैं इस भ्रम में था कि तुम आग में कूदी ही नहीं।" "मैं ही अभागिन हूँ। मैं यह सोच रही थी कि आप मुझे मरता छोड़कर भाग गये थे। आप क्षमा कीजिये।" रत्नावली ने कहा।

आखिर राजकुमार ने जो जादू किया, वह केवल इतना ही था कि उसने रत्नावली के पुरुष-द्वेष को समाप्त कर दिया। राजा ने उसका विवाह रत्नावली से करके उसको उसका इनाम दिया।





पण्डित की गौ

एक गाँव में एक गरीब पण्डित रहा करता था। होने को तो वह पण्डित था, पर उस में दुनियादारी कतई न थी। एक दिन किसी ने उसको बुलाकर एक गौ दान में दी। पण्डित ने गौ के गले में रस्सी बाँधी और रस्सी पकड़ अपने गाँव की ओर चल दिया। पीछे पीछे गौ चली आ रही थी।

रास्ते में एक जङ्गल पड़ता था। निर्जन वन में, एक जङ्गली पगडण्डी पर से गौ को साथ ले जाते हुए ब्राह्मण को पेड़ों की ओट में से दो चोरों ने देखा।

यह कोई वृद्ध ब्राह्मण नज़र आता है। आसपास कोई आदमी भी नहीं है। अगर जो मैं कहूँ तू करेगा तो हम इस गौ को आसानी से हथिया सकेंगे।" एक चोर ने दूसरे चोर से कहा।

दोनों चोर चुपचाप पीछे से गौ के पास पहुँचे। एक चोर ने गौ के गले से रस्सी निकाल अपने गले में बाँध ली और साथ चलने लगा।

दूसरे चोर ने यही मौका देख गौ को पीछे की ओर हाँक ले गया।

जब उसका साथी दूर निकल गया तो चोर अपने गले की रस्सी खींचने लगा। ब्राह्मण ने सोचा कि गौ रस्सी खींच रही है। उसने पीछे मुड़कर जो देखा तो गौ की जगह एक आदमी चला आ रहा था। उसके आश्चर्य की हद न रही।

चोर ने पण्डित को नमस्कार कर कहा-"महाराज! आपकी कृपा से मेरा अभिशाप दूर हो गया है। मुझे आपने फिर मनुष्य बना दिया है। आपका ऋण मैं कैसे चुका सकता हूँ?"

डी. सुषमा कुमारी

"तेरा शाप क्या है? और यह शाप-विमोचन क्या है?" पण्डित ने पूछा।

"महाराज, मेरे पिता छुटपन में ही गुज़र गये थे। मेरी माँ ने कितनी ही मैं मुसीबतें झेलकर मुझे पाला-पोसा। परन्तु मैं बिगड़ गया, आवारागिर्द हो गया। इधर उधर फिरता, शराब पीता, जुआ खेलता, सब कुछ करता। मैंने माँ को बहुत कष्ट दिये। मेरी माँ ने कहा-'जब तक तू पशु होकर लोगों की मार नहीं खायेगा, तबतक तुझे अक्ल नहीं आयेगी।' जब मैं उसके पैर पकड़कर गिड़गिड़ाया, तब उसने मुझ पर तरस खाकर कहा-'जब तुझे कोई पण्डित दान में पा लेगा, तब तेरा शाप दूर हो जायेगा।' आप शायद पण्डित हैं। इसीलिये मैं फिर मनुष्य हो गया हूँ।" चोर ने कहा।

यह सुन पण्डित बहुत सन्तुष्ट हुआ।

"बेटा, अगर मेरे पास गौ न रही तो कोई बात नहीं, तेरा शाप तो दूर हुआ। अब कभी माँ को न सताना। जा।" पण्डित ने चोर से कहा।

चोर पण्डित को प्रणाम कर उनसे विदा लेकर चला गया। बाद में चोर उस गौ



को उसी व्यक्ति के पास ले गया, जिसने उसको दान दिया था।

"महाराज, हमारे मालिक ने इस गौ को कहीं बेच आने के लिये कहा है। उन्हें पैसे की बहुत सख्त ज़रूरत है। आप ही इसे किसी न किसी दाम पर खरीद लीजिये।" चोरों ने कहा।

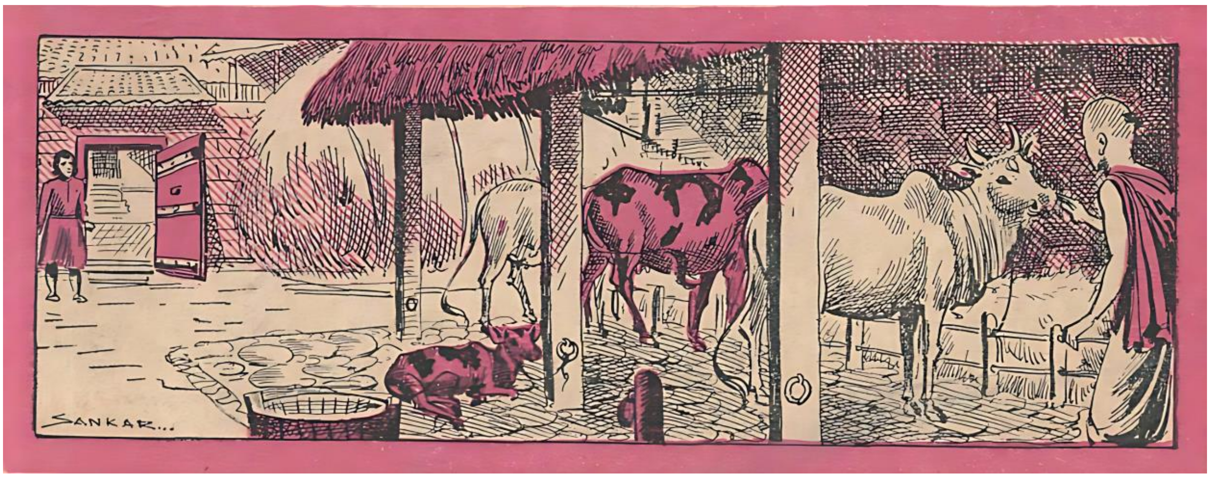
यह सोच कि पण्डित को पैसे की ज़रूरत है, उस व्यक्ति ने अपनी ही गौ को अच्छा दाम देकर खरीद लिया। चोर पैसा लेकर चम्पत हो गये।

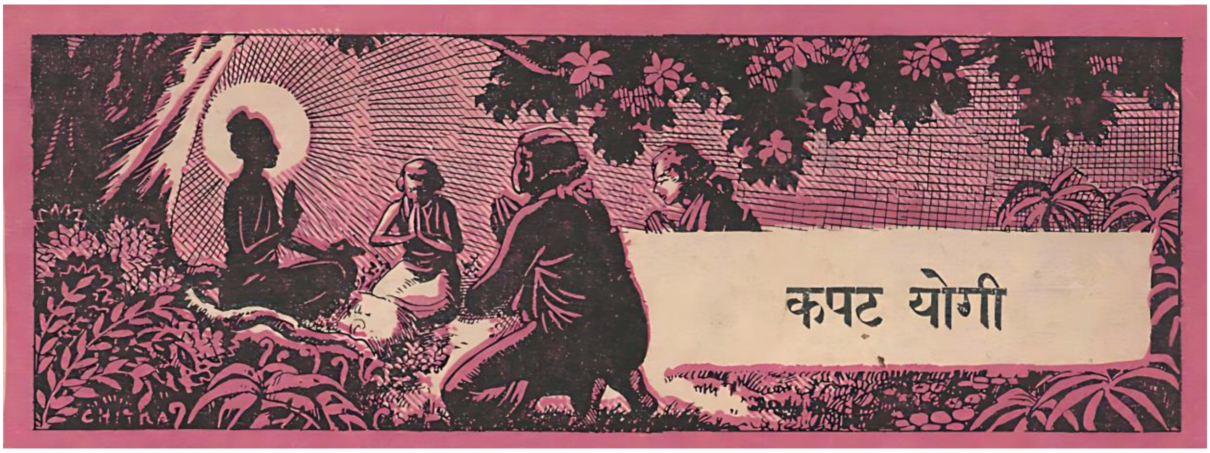
इधर पण्डित ने अपने विचित्र अनुभव के बारे में गाँव के लोगों को आश्चर्य से कहा। जिस किसी ने उसकी बात सुनी, वह मन ही मन हँसा। सब यह जान गये कि किसी ने उसको धोखा दिया है।

जिस व्यक्ति ने पहले पण्डित को गौ दान में दी थी, उसी ने पण्डित को ख़बर भिजवाई-"आप को जो गौ मैंने दी थी, वह रास्ता भटककर फिर मेरे पास चली आई है। परन्तु दान दी हुई गौ को घर मैं रखना अच्छा नहीं है। आप अपनी गौ को ले जाइये।" कहता हुआ वह व्यक्ति पण्डित को गौ के पास ले गया।

जब वही गौ पण्डित ने देखी तो उसे आश्चर्य भी हुआ और गुस्सा भी आया।

"अरे कम्बख़्त! फिर तूने शराब पीना और जुआ खेलना शुरू कर दिया है? मैं बड़ा हूँ। कम से कम मेरी बात तो सुनी होती? अक्ल नहीं आई? तुझ जैसे पापी को दान में लेकर मैं तेरा शाप दूर नहीं करना चाहता। अपने कर्म का फल तू ही भोग।" कहता हुआ पण्डित वहाँ से चला गया। उस व्यक्ति ने बहुत समझाया, मनाया, पर पण्डित ने एक न सुनी। उसने गौ लेने से साफ़ इनकार कर दिया।





जिन दिनों रेणुक पाञ्चाल नगर का राजा था, तब हिमालय पर्वत में महारक्षित नाम का तपस्वी रहा करता था। उसके पाँच सौ शिष्य थे।

एक बार महारक्षित शिष्य समेत देश का पर्यटन करता हुआ पाञ्चाल नगर पहुँचा। राजा को अपने नगर में इतने सारे साधुओं को पा बहुत सन्तोष हुआ। उसने उनकी परम्परा के अनुसार आदर-सत्कार किया। उनके ठहरने का प्रबन्ध बगीचे में किया गया। राजा ने स्वयं उनसे प्रार्थना की-"आप जितने दिन चाहें, यहाँ रहिये।"

वर्षा ऋतु की समाप्ति तक महारक्षित और उसके शिष्यों ने वहीं काल-व्यापन किया। फिर वे हिमालय वापिस चले गये।

रास्ते में उन्होंने एक सायेदार पेड़ के नीचे आराम लेते हुए राजा की सहृदयता के बारे में बातचीत की। इसी बातचीत के सिलसिले में यह भी सवाल उठा कि राजा बाल-बच्चों वाला होगा कि नहीं?

ज्योतिषवेत्ता शिष्य इस विषय में अनुसन्धान करने लगे। आखिर गुरु महारक्षित ने अपनी राय यों व्यक्त की-"रेणुक के एक दिव्य गुणोंवाला सुन्दर लड़का पैदा होगा।" यह सब को ज्ञात था कि गुरु का कहा हुआ सच निकलता था। इसलिये उन्होंने अनुमान किया कि राजा का अवश्य भला होगा।

पर शिष्यों में से एक को धूर्तता सूझी। उसने बीमारी का बहाना किया और कहा-"आप चलते रहिये, मैं पीछे आ जाऊँगा।" वह पीछे रह गया।

वह धूर्त पवन की चाल से पाञ्चाल नगरी पहुँचा और उसने अपने आगमन की ख़बर



राजा के पास पहुँचायी। राजा को ख़बर सुन आश्चर्य हुआ। वह स्वयं उससे मिलने गया। उसका उचित स्वागत कर राजा ने पूछा-"महाशय, क्या मैं यह जान सकता हूँ कि आप इतनी जल्दी क्यों वापिस आ गये हैं? तब धूर्त योगी ने कहा-"राजा! जब हम आराम कर रहे थे, तब हमने तुम जैसे सज्जन की याद की। हमने सोचा कि हम तुम्हारा क्या भला कर सकते हैं। यह प्रश्न उठा कि राजा का वंश चलता रहेगा कि नही? तब हमने अपनी दिव्य-दृष्टि से जाना कि तुम्हारे एक दिव्य गुणोंवाला लड़का पैदा होगा। हमने सोचा कि हम स्वयं यह ख़बर तुम्हें सुनाते जायें। हमारा काम खतम हो गया। अब हम जाते हैं।" वह वापिस जाने का उपक्रम करने लगा।

राजा इतना प्रसन्न हुआ कि साधु को उन्होंने जाने नहीं दिया। "महात्मा, आप मामूली आदमी नहीं हैं। सिद्ध पुरुष हैं, योगी हैं, आप यहीं रह जाइये।" राजा ने विनती की। उसने उस धूर्त योगी के ठहरने के लिये बगीचे में प्रबन्ध कर दिया। वह उसको परमेश्वर से भी अधिक मानने लगा। तब से वह योगी "दिव्य चक्षु" के नाम से जाना जाने लगा।

काम बन गया था। इसलिये दिव्य चक्षु फूला न समाता था। वह बगीचे के एक तरफ़ शाक-सब्जी पैदा करने लगा, और उनको मालियों द्वारा बिकवाकर पैसा जमा करने लगा।

उसी समय बोधिसत्व रेणुक महाराज के पुत्र के रूप में पैदा हुआ। भगवान की अनुकम्पा से वह पैदा हुआ था, इसलिये उसका नाम "सुमन" रखा गया। माँ-बाप लाड़-प्यार से उसका पालन-पोषण करने लगे।

जब सुमन सात वर्ष का हुआ, तब राजा के सामन्तों में परस्पर युद्ध होने लगा। पिता की अनुपस्थिति में एक बार सुमन बगीचा देखने गया। वहाँ सुमन ने एक तरफ़ देखा कि गेरुए कपड़े पहने कोई पौधों को पानी दे रहा था। वह माली से भी अधिक मेहनत कर रहा था। बुद्धिमान सुमन को तुरन्त वास्तविकता का भान हो गया। उसने उसको उचित दण्ड देने की ठानी।

"अबे माली, यहाँ क्या कर रहा है?" कहते हुये उसने साधु को डाँटा-ड़पटा।

दिव्य चक्षु हैरान रह गया। उस स्वामी का, जो मजे में अपने दिन काट रहा था, बड़ा अपमान हुआ। राजकुमार चूँकि असलियत जान गया था, उसे आशङ्का हुई कि ज़रूर कभी न कभी उसकी तरफ़ से खतरे की सम्भावना है। अगर सुमन जीवित रहा तो ज़रूर उसकी पोल खुलकर रहेगी। उसने उसकी हत्या कर देने का निश्चय किया।

जब राजा के आने का ठीक समय हो गया, तब दिव्य-चक्षु ने अपना आसन एक तरफ़ फेंक दिया। कमण्डल के टुकड़े टुकड़े कर



दिये। आश्रम के चारों ओर घास-फूस बिखेर दी। शरीर पर तेल लगा लिया। घर में जाकर वह कराहने लगा।

राजा वापिस आते ही गुरु दिव्य-चक्षु के दर्शन करने के लिये गया। आँगन में कूड़ा-करकट, घास-फूस देखकर उसको आश्चर्य हुआ। अन्दर जाकर देखा तो योगी कराह रहा था। घबराते हुए राजा ने पूछा-"क्या बात है?"

"बात क्या होती? यह सब तेरे लड़के की करतूत है।" कपट योगी ने सारी बात ऐसी सुनायी, जैसे सुनाते हुए



बहुत कष्ट व खेद हो रहा हो। राजा की उस पर अपार भक्ति थी। उसने न आव देखा न ताव, और झट हुक्म दे दिया-"सुमन का सिर काटकर मेरे सामने ले आओ।" जल्लादों ने जाकर यह बात सुमन से कही। सुमन तब अपनी माँ के पास बैठा हुआ था।

सुमन सीधा पिता के पास गया- "पिताजी! मुझे आपकी आज्ञा पर कोई आपत्ति नहीं है। परन्तु यह पहले बताइये कि मेरा कसूर क्या है, फिर आप जो चाहें, सो कीजिये।"

राजा ने आग बबूला होते हुए डाँटा- "छी, तमीज़ नहीं है, यों बकते जाते हो? इस पवित्र महान योगी को 'माली' कहकर पुकारने से भी बढ़कर कोई अपराध है?"

तब सुमन ने कहा-"पिताजी! इस महात्मा, महान, पवित्र योगी की करतूतों के बारे में ज़रा पहरेदारों से पूछिये। आप ही को सब मालूम हो जायेगा।"

चारों ड्योढ़ियों के पहरेदार बुलाये गये। उन्होंने बताया कि रोज योगी शाक-सब्जी बगीचे में पैदाकर, उनको छुपे छुपे बाज़ार में बिकवाता है। फिर उसके आश्रम में खोज-पड़ताल करने पर वहाँ बहुत रुपया-पैसा भी बरामद हुआ। राजा को तब ज्ञात हुआ कि लड़का निर्दोषी था।

"पिताजी, क्या अब आपको पता लगा कि मैंने उसे क्यों 'माली' कहा था? घमण्डी योगी और मूर्ख राजा क्या न्याय सहन कर सकते हैं? इस धर्महीन राज्य में मैं अब एक क्षण भी नहीं रह सकता।" सुमन ने कहा।

राजा को अपनी करनी पर बहुत पछतावा हुआ। "बेटा! मुझ से जल्दबाज़ी

हुई। माफ़ करो। अब तुम ही इस राज्य को सम्भालो।" राजा ने कहा।

तब सुमन ने कहा-"पिताजी, बातें मन्त्र के समान हैं। औषधी की जड़ी-बूटियाँ जो काम करती हैं, वही काम मुख से निकलनेवाली बातें करती हैं। बिना सोची विचारी बात, विषैली जड़ी-बूटियों की तरह हैं। जहरीली जड़ी-बूटी का उपयोग करने पर उसका फल भुगतना ही पड़ेगा। उसी तरह अच्छी बातें अच्छी जड़ी-बूटियों की तरह असर करती हैं। आपके मुख से अनुचित बातें निकली हैं। आपकी आज्ञा के अनुसार, मैं जब माँ के पास बैठा हुआ था, जल्लाद मेरा सिर काटने आये। फिर बाद में सोचने-समझने पर आपको पछतावा करना ही चाहिये। मैं अभी आपका राज्य छोड़कर चला जाता हूँ।"

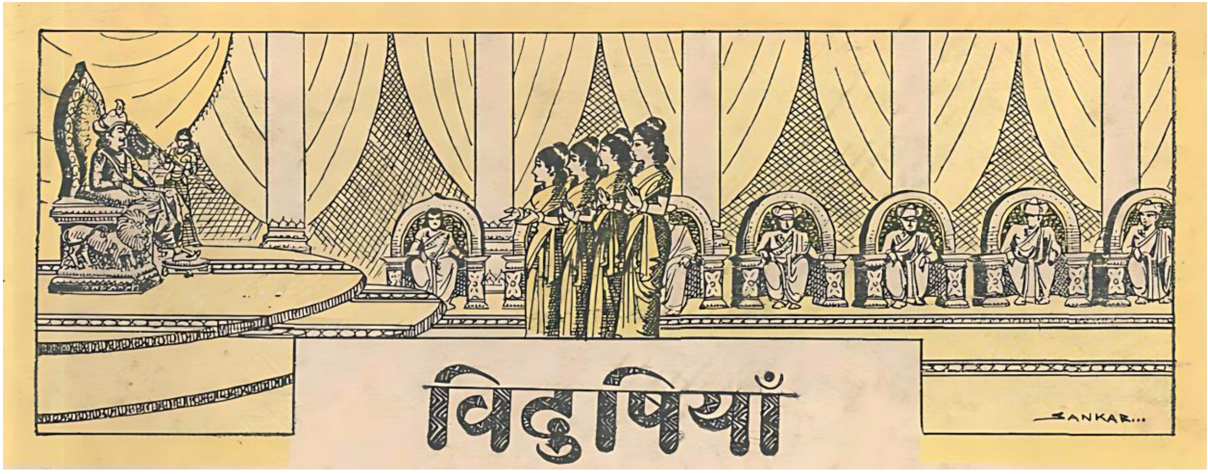
राजा ने रानी से सुमन का निश्चय बदलने के लिये कहा। पर रानी, चूँकि धर्मपरायण थी, उसने उसका कहा न सुना। सुमन ने जब हिमालय पर्वत पर जाने की ठानी तो वह माँ से बिदा लेने गया। रानी ने बेटे को यों आशीर्वाद दिया-"बेटा, तू धर्मात्मा है। पवित्र जीवन व्यतीत कर मुक्ति प्राप्त कर।"

सुमन हिमालय पर्वत पर पहुँचकर, वहाँ विश्वकर्मा की बनाई हुई एक दिव्य-कुटीर में रहने लगा।

रेणुक ने अपनी गल्ती का अनुभव कर कपटी योगी को मरण-दण्ड दिया। उसने यह भी घोषणा कर दी कि राज्य में कोई किसी योगी को आश्रय न दे।

इस तरह एक धूर्त, कपटी योगी के कारण, पाञ्चाल नगरी में, सब योगियों की हानि हुई, और वे राजा, प्रजा के आदर-सत्कार से वञ्चित हुए।





एक रोज़ राजा भोज के दरबार में चार कन्यायें आई। वे छुटपन में ही विद्याभ्यास के लिये काशी चली गई थीं और समस्त विद्याओं में वे वहाँ पारङ्गत हुईं। जब वे सयानी हुयीं, तो विवाह के लिये घर जाते समय, राजा भोज के यहाँ पहुँचीं। उन्के दरबार में कदम रखते ही दरबारी उनका सौंदर्य देखकर चकित हो गये। उनको देखकर राजा ने पूछा- "आपकी क्या जात है? कहाँ से आ रही हैं? आप यहाँ किस काम पर आई हैं?"

"राजा! हमने काशी में विद्या पाई है। हम यह जानने के लिये चली आईं कि क्या कोई हम से अधिक जानता है। वेष भूषा और भाषा में हम चारों यद्यपि समान-से प्रतीत होती हैं, परन्तु वास्तव में हम चारों की अलग अलग जाति है। आपके दरबार में दिग्गज पण्डित हैं। भला आपको हमारी जाति मालूम करने में क्यों कष्ट होना चाहिये?" कन्याओं ने कहा।

उनकी जाति मालूम करना राजा भोज और पण्डितों के लिये एक समस्या हो गई। राजा भोज ने पण्डितों की तरफ़ देखा। उनके मुँहों पर भी हवाइयाँ उड़ रही थीं।

"यदि आप हमारा आतिथ्य स्वीकार कर यहाँ तीन दिन रहें, तो इस बीच में हमारे पण्डित आपकी जातियों के बारें में मालूम कर लेंगे।" राजा भोज ने चारों लड़कियों से कहा।

लड़कियाँ मुस्कराईं और राजा भोज का कहा मान गईं। वे रोज़ दरबार में आतीं, और पण्डितों के वाद-विवाद में भाग लेतीं। परन्तु पण्डितों को उनकी जाति के बारे

श्री वेद प्रकाश रस्तोगी

में कुछ भी न मालूम हो सका। जैसे उनकी वेष-भूषा में समानता थी, वैसे वे अन्य विषयों में भी समान थीं। उनकी बातों से क्या, हावभाव से क्या, अभिरुचि से क्या, अक्लनन्दी से क्या, दरवारी पण्डित उनकी जाति के बारे में कुछ न मालूम कर सके। दो दिन गुज़र गये। अभी एक दिन बाकी था।

दूसरे दिन रात को, कालिदास कम्बल ओढ़कर उस घर के बाहर, चबूतरे पर लेट गया, जहाँ वे ठहराई गई थीं। कालिदास का ख्याल था कि जब वे सबेरे उठकर आपस में बातें करेंगी, तब उनके जाति-गोत्र का पता लग सकेगा।

तीसरे दिन सबेरा हुआ। चारों लड़कियाँ नींद से उठीं। खिड़की के पास आ प्राची में सूर्योदय होता देख उनमें से एक ने यों कहा:

अभू त्याची पिंगा रसपति रिव प्राश्य कनकम्।

(पूर्व दिशा सोना मिले हुये पारे की तरह पीली पड़ गई है)

एक और कन्या ने कहा:

गतच्छाय चन्द्रो बुधजन इव ग्राम्य सदसि।

(मूर्खों की सभा में पण्डितों की तरह चन्द्रमा शर्मिन्दा हो रहा है।)



तीसरी कन्या ने कहा:

क्षणात् क्षीणा स्तारा नृपतय इवा नुद्यमपराः

(आलसी राजाओं की तरह नक्षत्र आकाश में छुप गये हैं।)

चौथी लड़की ने कहा:

न राजन्ते दीपा द्रविणरहिताना मिव गृहा:

(गरीब गृहस्थियों की तरह दीप कान्ति विहीन हो गये हैं।)

यह सुनते ही कालिदास जिस काम पर आया था, वह सफलतापूर्वक पूरा हो गया। वह तुरन्त अपने घर गया।

उस दिन जब विद्वत्सभा प्रारम्भ हुई तो राजा भोज ने पण्डितों से कहा- "ये विदुषियाँ तीन दिन से हमारे दरबार में हैं। इनकी जाति के बारे में जानने की जिम्मेवारी आप सब पर है। अगर आप में कोई बता सकता है तो उनकी जाति के बारे में बताइये। नहीं तो आप स्वीकार कीजिये कि आप उनसे पराजित हो गये हैं। पण्डितों ने सिर हिलाया। केवल कालिदास ने खड़े होकर निम्न श्लोक सुनाया:

"अभू त्याची पिंगा रसपति रिव प्राश्य कनकम्

गतच्छ चन्द्रो बुधजन इव ग्राम्य सदसि

क्षणात् क्षीणा स्तारा नृपतय इवा नुद्यमपराः

न राजन्ते दीपा द्रविण रहिताना मित्र गृहाः

महाराज! इस श्लोक की चार पंक्तियों को इन चार लड़कियों ने बनाया है। इसमें से पहिली पंक्ति बनानेवाली कन्या सुनार जाति की है और शेष पंक्तियों को बनानेवाली क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य हैं।"

कालिदास की बात सुनते ही चारों विदुषियों ने उनको प्रणाम किया और कहा कि उनका अनुमान ठीक है।

राजा भोज ने उन कन्याओं के पाण्डित्य और चातुर्य की प्रशंसा कर, उनको पारितोषक आदि देकर, आदर-सम्मान के साथ विदा किया।





कीर्तिवती की कहानी

पाटलीपुर में एक वैश्य रहा करता था। उसकी एक लड़की थी, जिसका नाम कीर्तिवती था। उसने उसका विवाह मगध के रईस देवसेन से कर दिया। देवसेन के पिता जीवित न थे। घर में माँ का ही राज था। जब देवसेन की माँ ने देखा कि उसकी पत्नी उसे अधिक प्यार करने लगी है, वह कीर्तिवती को नाना प्रकार से सताने लगी। कहीं ऐसा न हो कि पति का दिल दुखे, कीर्तिवती ने अपने कष्टों के बारे में पति से भी कभी न कहा।

देवसेन को व्यापार पर एक बार वलभी नगर जाना था। उसकी अनुपस्थिति में चूँकि उसका कोई और सहारा नहीं था, इसलिये कीर्तिवती ने अपने कष्टों की कहानी पति को सुनाई।

देवसेन को आश्चर्य हुआ। परन्तु उसके लिये यह भी सम्भव न था कि पत्नी को साथ ले जाये। इसलिये उसने घुमा-फिराकर माँ से कहा- "माँ, मैं जा रहा हूँ। तुम्हारी बहू बड़े घर की है। देखें, तुम उसे कैसे देखती हो।"

"क्यों बेटा! यह भी कोई कहने की बात है? जैसा तू मेरे लिये है, वैसी वह भी है।" माँ ने कहा। देवसेन का सन्देह जाता रहा, और वह चला गया।

उसके जाते ही सास ने बहू की हड्डी-पसली एक कर दी। "क्यों चुड़ैल! तू हम दोनों के बीच दीवार खड़ी करनी चाहती है? भोग, फल अब उसका।" कीर्तिवती को तहखाने में खींच ले गई और वहाँ उसको बन्द कर दिया। अगर उसकी बहू साँस घुटकर तहखाने में ही मर गई तो



सास ने सोचा कि वह बेटे से कहेगी- "बेटा! तेरी पत्नी तेरी याद में घुट घुटकर मर गई है।"

तहखाने के अन्धेरे में कीर्तिवती अपनी हालत पर रोती रही। उसके पिता थे, जिसकी शहर में अच्छी धाक थी। पति थे, जो उस पर जान देते थे। पैसा था। परन्तु उसकी हालत इतनी दयनीय हो गई थी। जब अन्धेरे में उसने इधर उधर खोजा तो उसको एक रम्भास दिखाई दिया। उससे वह सुरङ्ग खोदने लगी। खोदते खोदते सुरङ्ग उसके शयन कक्ष तक पहुँची।

झट कीर्तिवती, जो कुछ कपड़े, जेवर जवाहारात मिले, उन्हें बटोरकर, सवेरा होते होते शहर से बाहर चली गई। अगर वह इस हालत में अपने पिता के पास गई तो वृथा पति का अपमान होगा। इसलिये वलभी नगर जाकर उसने अपने पति से मिलने की ठानी।

उसने तालाब में नहाकर आदमी का वेश धारण कर लिया। रास्ते में उसको समुद्रदत्त नाम का व्यापारी दिखाई दिया। वह भी वलभी नगर जा रहा था।

समुद्रदत्त के साथ सामान से भरी कई गाड़ियाँ जा रही थीं। अगर वह मामूली रास्ते से जाता तो उसको हर शहर में चूङ्गी देनी पड़ती; इसलिये वह गाड़ियों को जङ्गल के रास्ते ले जा रहा था। जङ्गल में थोड़ी दूर जाकर उन्होंने पड़ाव किया।

थोड़ी देर बाद उन्हें लोमड़ियों का चिल्लाना सुनाई दिया कि डाकू धावा मारने आ रहे हैं; उन्होंने सोचा। व्यापारी और गाड़ीवाले हथियार लेकर सतर्क बैठ गये।

कीर्तिवती ने सोचा, अगर डाकू आ गये तो प्राणों का तो खतरा था ही, उनको यह मालूम होने पर कि वह स्त्री है, शायद उसका

सतीत्व भी भङ्ग हो। अपनी रक्षा की जिम्मेवारी व्यापारी पर न छोड़, चारों ओर घूम-घूमकर जङ्गल में उसने एक गढ़ा देखा। वह उसमें कूद गई, और ऊपर से पत्ते ढँक दिये।

रात को डाकुओं का गिरोह आया। डाकुओं का व्यापारी के आदमियों के साथ मुक़ाबला हुआ। कई मारे गये। डाकू व्यापारी का माल लूटकर ले गये। व्यापारी जान बचाकर भाग गया।

सबेरा होने पर कीर्तिवती गढ़े में से निकली और जङ्गल में चलने लगी। कुछ दूर जाने पर उसे जङ्गली आदमियों का एक गाँव दिखाई दिया। उस गाँव में एक जङ्गली वैद्य ने किसी रोगी को, सिर पर घी मलकर, धूप में बैठा दिया था। वैद्य ने बग़ल में फिर एक पानी से भरा घड़ा रख दिया। उस रोगी का कान सूजा हुआ था, लाल हो रहा था। एक नली लाकर, एक सिरे को रोगी के कान पर लगाया, और दूसरे को घड़े के पानी में रख दिया।

कीर्तिवती के देखते देखते ही कान का रङ्ग बदलने लगा। रोगी का दर्द भी जाता रहा। वैद्य ने घड़े के पानी में से क्रिमियों को निकालकर दिखाया। रोगी के शरीर





में घुसकर क्रिमियों ने रोग पैदा कर दिया था। धूप पड़ते ही, वे नली में से ठण्डे पानी में आ गये।

"इस प्रकार के क्रिमि ही वसुदत्त महाराजा को रोगी बनाये हुये हैं। वे भले ही मर जाएँ, पर हम जैसे वैद्यों से चिकित्सा नहीं करवायेंगे।" उस जङ्गली वैद्य ने कहा। यह सब देख कीर्तिवती आश्चर्य करती हुई आगे चली। कुछ दूर जाने के बाद उसको एक गड़रिया दिखाई दिया।

वसुदत्त महाराजा कहाँ रहते हैं?" उसने गड़रिये से पूछा।

"वह देखो। सामने वसुदत्तपुर ही दिखाई दे रहा है। यह सारा जङ्गल महाराज का ही है।" गड़रिये ने कहा।

किर्तिवती के मन में एक और ख्याल आया। समुद्रदत्त ने बताया था कि सब व्यापारी इसी रास्त आते हैं। हो सकता है, उसका पति भी आयें। अगर वह वसुदत्तपुर पहुँच गई तो वहाँ उनसे मिल भी सकती है। अगर जङ्गली वैद्य की बात सच है तो वह राजा की चिकित्सा भी कर सकती है। अगर राजा की मदद मिल गयी तो वह पति को बिना किसी आपत्ति के जङ्गल के पार भी ले जा सकती है।

इस तरह सोचती हुई कीर्तिवती वसुदत्तपुर पहुँचकर राजमहल में गई। तब तक महाराजा वसुदत्त की हालत बहुत बिगड़ चुकी थी।

जब आदमी का वेश धरे हुए कीर्तिवती ने राजा की चिकित्सा शुरू की, तो सब को राजा के बचने की आशा हुई। पानी के घड़े में महाराजा के कान से एक सौ पचास कीड़े आये। राजा का दर्द तो ख़तम हो ही गया था, उसकी जान भी बच गई। दूध, घी खाने के कारण, उसका स्वास्थ्य जल्दी ही फिर से ठीक हो गया।

उस शहर में ऐसा कोई न था, जिसने कीर्तिवती की प्रशंसा न की हो। केवल राजा ने ही नहीं, अपितु नगर के रईस और गरीबों ने भी उसको अनगिनत उपहार भेजे। उन सब उपहारों को उसने सुरक्षितरूप से अपने पास रख लिये।

देवसेन घर वापिस जाता हुआ वसुदत्तपुर आया। जब कभी कोई व्यापारी माल लेकर आता तो लोगों को मालूम हो जाता। रईस जाकर आवश्यक वस्तुयें खरीदते। व्यापारी अपना माल बेचते और कई लोग देखने के लिये इकट्ठे हो जाते।

राजा जब वसुदत्त का माल देखने गया तो साथ कीर्तिवती को भी ले गया। यद्यपि वह पुरुष वेश में थी, तो भी उसकी आँखें देखते ही, देवसेन ने अपनी पत्नी को पहचान लिया।

उसके बाद उसके लिये यह ज़रूरी न था कि पुरुष वेश धारण किये रखे। मुसीबतें झेलने के बाद आख़िर कीर्तिवती अपने पति से मिल पायी। वसुदत्त महाराजा को भी बड़ा सन्तोष हुआ।

राजा ने देवसेन और कीर्तिवती को राजमहल में बुलाकर, उनके सम्मान में



एक बड़ी दावत दी। कीर्तिवती ने अपने कष्टों की कहानी राजा और अपने पति को सुनायी।

देवसेन को बड़ा गुस्सा आया कि अच्छी तरह देखने का वचन देकर भी उसकी माँ ने उसकी पत्नी के साथ इतना बुरा व्यवहार किया था। राजा कीर्तिवती की बहादुरी भरी कहानी सुनकर बहुत ही प्रभावित हुआ।

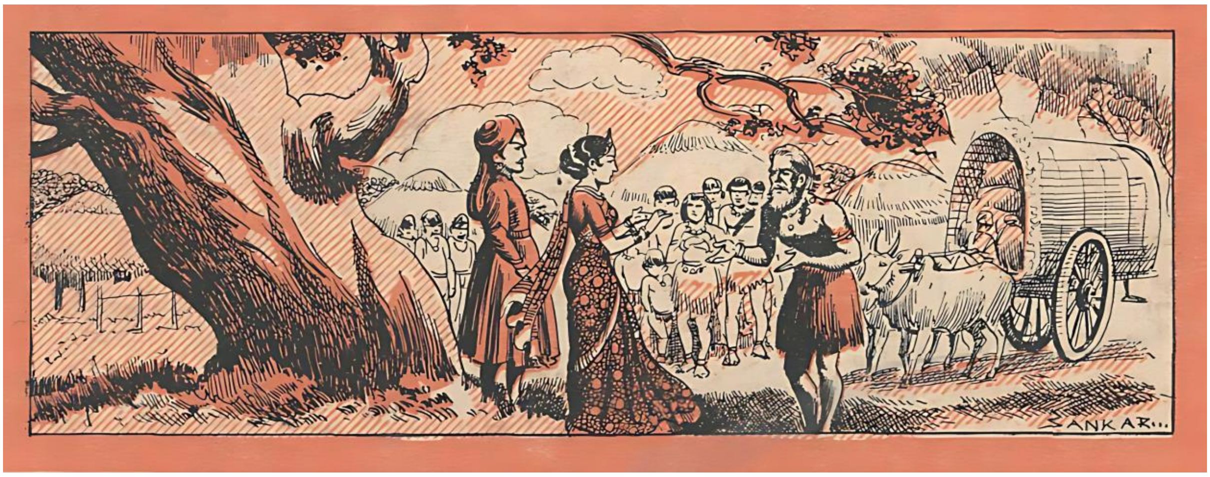
तुम दोनों मेरी लड़की और दामाद के समान हो। मैं तुमको जाने नहीं दूँगा। बेटी मेरे बाद गद्दी पर बैठेगी। तुम भी इसी शहर में कोई व्यापार कर लो। तुम्हारा कोई विरोध नहीं कर सकता, समझे?" राजा ने कहा।

देवसेन इतना सब-कुछ हो जाने पर अपनी माँ को नहीं देखना चाहता था। कीर्तिवती के बहुत समझाने पर भी उसने अपनी माँ को वसुदत्तपुर में लाने से इनकार कर दिया।

एक दिन कीर्तिवती, राजा और लोगों दिये हुए उपहारों को गाड़ियों पर लदवाकर पति के साथ जङ्गल की ओर चल दी। जङ्गलियों के गाँव में पहुँचकर उसने जङ्गली वैद्य को बुलवाया।

"राजा की बीमारी ठीक करने के कारण उन्होंने तुम्हारे लिये ये उपहार भेजे हैं।" यह कहकर उसने गाड़ियों में लाये गये सब उपहार, उस वैद्य को दे दिये।

जङ्गली वैद्य आश्चर्य में यह सोचने लगा कि उसने कब वसुदत्त महाराजा की बीमारी ठीक की है। वह उपहारों से भरी गाड़ियों की बग़ल में मुँह बायें खड़ा हो गया और वापिस जाते हुये कीर्तिवती और देवसेन की ओर ताकने लगा।





केरल देश में एक राजा रहा करता था। उसने सारे देश में इमली के पेड़ व बाग़ लगाने के लिये मन्त्री को आज्ञा दी। केरल में नम्बियार नाम का प्रसिद्ध वैद्य रहा करता था। नम्बियार की ख्याति सम्पूर्ण भारत में फैली हुई थी। उसी समय दिल्ली के बादशाह के दरबार में अरबी हकीम नाम का एक वैद्य भी रहा करता था। लोगों का कहना था कि अनुभव व ज्ञान में दोनों ही समान थे।

जब नम्बियार को यह मालूम हुआ कि राजा देश में सब जगह इमली के पेड़ लगवा रहा है, तो वह उसके पास गया। राजा से उसने कहा- "इमली के पेड़ स्वास्थ्य के लिये अच्छे नहीं होते। उनके बदले नीम के पेड़ लगवाइये। लोगों का स्वास्थ्य बढ़ेगा। छूत की बीमारियाँ नहीं होंगी।" राजा ने उसकी एक न सुनी।

"इमली के पेड़ से बहुत फ़ायदे हैं। इमली अच्छे दाम पर बिकती है। इमली की दाँतुन से दाँत साफ़ किये जा सकते हैं। अगर सड़क के दोनों ओर इमली के पेड़ लगवा दिये गये, तो बिना किसी की रखवाली के वे बड़े बड़े सायेदार पेड़ बन जाते हैं। मुसाफ़िर उनके नीचे आराम कर सकते हैं। नीम के पेड़ का तो कुछ भी उपयोग नहीं है।" राजा ने कहा।

नम्बियार ने कुछ न कहा। वह सीधा मन्त्री के घर गया। मन्त्री ने उसका स्वागत कर कुशल-क्षेम पूछा। नम्बियार ने मानों, उसने मन्त्री के चेहरे पर कुछ देख लिया हो। मन्त्री की आँखें खोलकर, जीभ देखकर परीक्षा की। नाड़ी भी देखी। मन्त्री ने

श्री य. अर्जुनराव



मुस्कुराते हुए पूछा-"आप क्यों इस तरह परीक्षा कर रहे हैं? मुझे तो कोई बीमारी नहीं है।"

नम्बियार ने गम्भीरता से कहा-"अभी कोई खास बीमारी नहीं है, परन्तु छः महीने के अन्दर आपको एक भयङ्कर रोग होनेवाला है। सकाल में उसकी चिकित्सा करवा लेना अच्छा है।"

मन्त्री ने घबराते हुए कहा-"यही बात है तो आप तुरन्त चिकित्सा शुरू कर दीजिये।"

"यह बीमारी मेरी दवाइयों से ठीक न होगी। आप तुरन्त जाकर दिल्ली के बादशाह के दरबारी हकीम के पास इलाज करवाइये।" नम्बियार ने सलाह दी।

"अगर मैं उतनी दूर मुसीबतें झेलता झेलता गया भी तो क्या वे मेरी परवाह करेंगे?" मन्त्री ने पूछा।

"हकीम साहब ऐसे भेद-भाव का बर्ताव नहीं करते। वे गरीब से गरीब के इलाज में भी अपनी तरफ से कोई कसर नहीं छोड़ते। आपको तुरन्त उनके पास जाना अच्छा है।" नम्बियार ने बताया।

रोग आदि के बारे में नम्बियार की सलाह की उपेक्षा करना ख़तरनाक था। मन्त्री ने एक साल की छुट्टी ली, और वह दिल्ली के लिये रवाना हो गया। उसके जाते समय नम्बियार ने यों सलाह दी-"रास्ते में इमली के पेड़ के नीचे ही आराम कीजिये। इमली के बाग में ही पड़ाव डालिये। इमली की दाँतून से ही दाँत साफ़ कीजिये। खाना भी इमली के ईन्धन से ही पकवाइये।"

मन्त्री भी सपरिवार दिल्ली के लिये रवाना हुआ। दिल्ली पहुँचने से पहिले ही उनका स्वास्थ्य बिगड़ने लगा। वे कमज़ोर होने लगे।

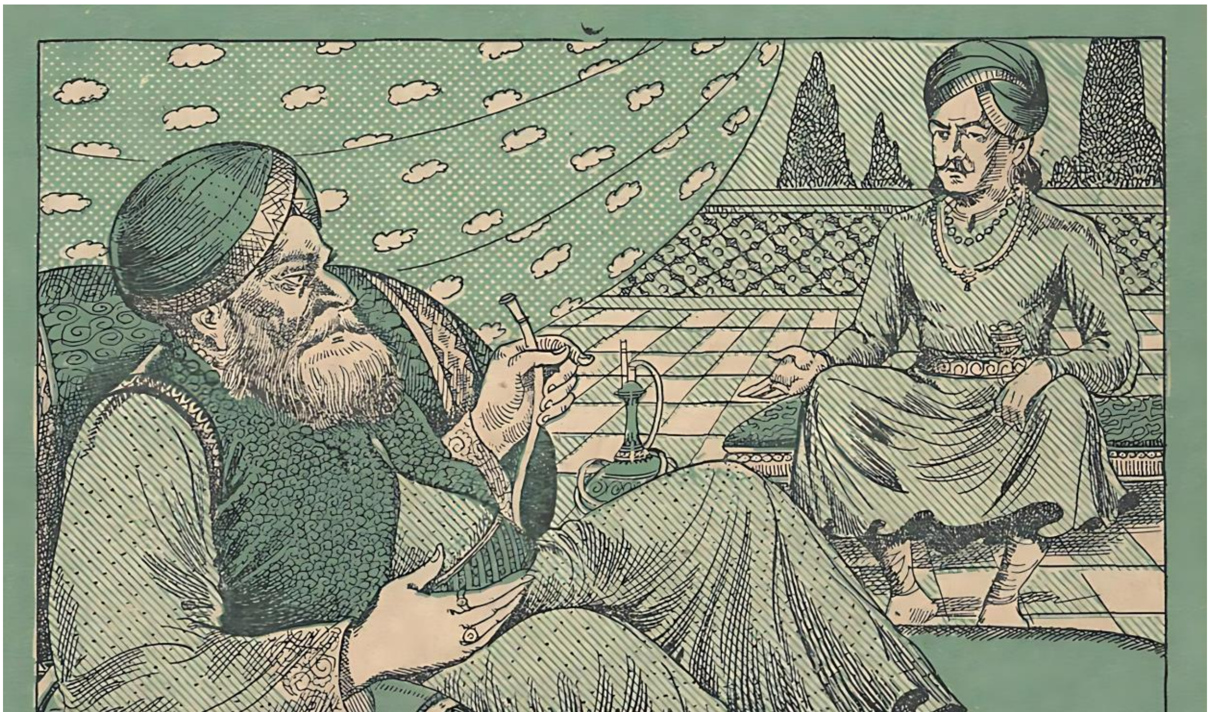
"आहा! देखा, नम्बियार कितना अक्लमन्द वैद्य है? आज जो बीमारी हो रही है, उसके बारे में उसने उसी दिन बता दिया था।" यह सोचता सोचता बहुत कमज़ोरी की हालत में मन्त्री दिल्ली पहुँचा।

उन्हें आसानी से ही हकीम के दर्शन मिल गये। मन्त्री का कहा सुनकर, हकीम ने अनुमान किया कि इमली के पेड़ों से होनेवाली हानि को दिखाने के लिये ही नम्बियार ने मन्त्री को दिल्ली भेजा है।

"आपका रोग तो बहुत भयङ्कर है, परन्तु उसका इलाज आसान है।"

"कहिये, इलाज बताइये। मैं ज़िन्दगी भर आपका कृतज्ञ रहूँगा।" मन्त्री ने कहा।

आप तुरन्त अपने देश को वापिस जाइए। रास्ते में आप नीम की साया में ही आराम कीजिये। नीम की दाँतून से ही दाँत साफ़ कीजिये। हवा अगर न चल रही हो तो नीम के पत्तों के पंखों से हवा लीजिये। ऐसी जगह सोइये, जहाँ नीम की हवा आती हो। इससे बढ़कर आपके रोग के लिये कोई इलाज नहीं है। नम्बियार को आप हमारा सलाम कहिये। अब आप जा सकते हैं।" हकीम ने मन्त्री से कहा।



अगर यही सलाह कोई और वैद्य देता तो शायद मन्त्री परवाह न करता। हकीम ने बताया था, इसलिये उसने उसकी सलाह पर अमल करने की ठानी और सकुटुम्ब अपने देश की ओर चल दिया। हकीम के कहे अनुसार वह नीम के पेड़ के नीचे ही आराम करता, नीम की हवा लेता, वह रास्ते में ही फिर ठीक हो गया। जब वह स्वदेश पहुँचा तो उसका भार दुगुना हो गया था, और चेहरे पर रौनक आ गयी थी। बल भी बढ़ गया था।

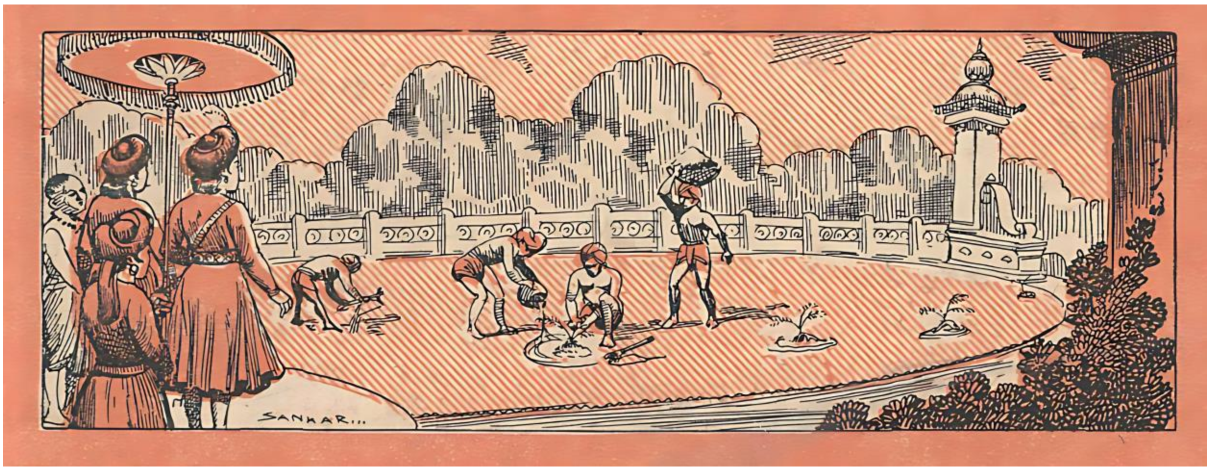
मन्त्री के घर पहुँचते ही नम्बियार उसको देखने के लिये आया। मन्त्री ने अपना अनुभव नम्बियार को सुनाया।

"आओ, हम एक बार राजा के पास हो आयें। यह अधिक आवश्यक है कि आपके अनुभव वे सुनें।" नम्बियार ने कहा।

दोनों मिलकर राजा के पास गये। राजा मन्त्री का अनुभव सुन आश्चर्य चकित हो गया।

"इसमें मेरा भी बहुत कुछ क़सूर है। आप दोनों मुझे क्षमा कीजिये। मन्त्री जी की कोई बीमारी न थी, पर मैंने उन्हें दिल्ली जाने के लिये कहा। मेरा उद्देश्य केवल इमली के पेड़ से होनेवाली हानि को निरूपित करना था। बाद में हकीम ने, बिना मेरे कहे, नीम की महिमा दिखा दी। अब भी आप प्रजा के कल्याण को ध्यान में रखते हुए, इमली के पेड़ों को लगवाना छोड़ दीजिये। नीम के पेड़ लगवाइये।" नम्बियार ने कहा।

राजा ने कोई आपत्ति न की, और सारे राज्य में नीम के पेड़ों को लगाकर वन-महोत्सव मनाने की आज्ञा दी।





रङ्गीन चित्र-कथा, चित्र – २